nbt.india
एकः सूते सकलम्

पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष - 5 • अंक - 6 • नवंबर - दिसंबर 2020 • मूल्य ₹35.00

• शिक्षा के आदर्शों में परिवर्तन • लेखकों के लेखक महात्मा गांधी • प्राचीन भारत में ईंट

• चाँद को छूने की नई होड़ • फणीश्वर नाथ रेणु की कलम कैमरा थी • एक किशोरी फुलझड़ी-सी

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की साहित्य और संस्कृति-पत्रिका

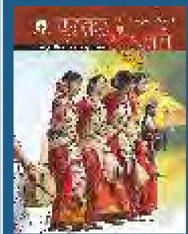
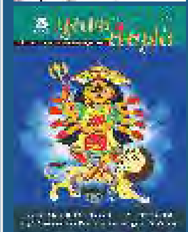

द्विमासिक

पुस्तक संस्कृति

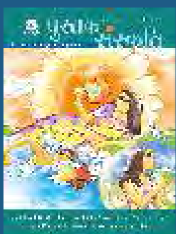

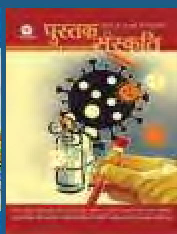
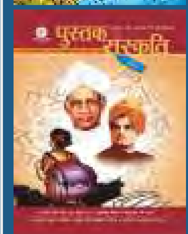

द्विमासिक
पत्रिका का शुल्क
एक अंक की
कीमत ₹ 35.00

पंजीकृत डाक से भेजने के व्यय सहित वार्षिक सदस्यता
₹ 225.00 (भारत में)
विदेश में ₹ 1000.00

सदस्यता शुल्क
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के नाम ड्राफ्ट अथवा ई–बैंकिंग से भेज सकते हैं।

Bank : Canara Bank
Branch : Vasant Kunj
New Delhi-110070
Acc.no.: 3159101000299
IFSC : CNRB0003159

nbt.india

संपादक, पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़–II,
वसंत कुंज, नई दिल्ली–110070 (भारत)
संपर्क : 91–11–26707758, 26707876
ई–मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

पुस्तक संस्कृति अब निम्न स्थानों पर भी उपलब्ध है–

1. गुगलानी ब्रदर्स, 96 मॉल रोड, किंग्सवे कैंप, दिल्ली-110009. फो.: 9312125847
2. पांडे बुक स्टोर, 132, जी.जी. मेन रोड, जी.टी.बी. नगर के पास, गेट नं.4, मेट्रो स्टेशन, दिल्ली-110009. फो.: 011-49405845
3. शुक्ला बुक स्टोर, जी.जी. मेन रोड, जी.टी.बी. नगर के पास, गेट नं.4, मेट्रो स्टेशन, दिल्ली-110009. फो.: 9953185805
4. गीता बुक सेंटर, जे.एन.यू., गंगा छात्रावास के पास, न्यू कैंपस, नई दिल्ली-110067. फो.: 9873352269
5. जवाहर बुक सेंटर, पुस्तकालय भवन के पास, जे.एन.यू., नई दिल्ली-110067. फो.: 9818390503
6. हेम बुक सेंटर, पुस्तकालय भवन के पास, जे.एन.यू., नई दिल्ली-110067. फो.: 9810985436
7. सेंट्रल न्यूज एजेंसी प्रा. लिमिटेड, पी-20, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001. फो.: 011-41541111
8. रामगोपाल एंड संस, शंकर बाजार, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001. फो.: 9427306159
9. रोशन लाल एंड संस, 20, बंगाली मार्केट, नई दिल्ली-110001. फो.: 9811220234
10. पांडे बुक स्टोर, लक्ष्मी नगर, यू-110, दिल्ली। फो.: 9717264572
11. टॉपर्स लॉ हाउस, एल जी-2, यू-110, विकास मार्ग, दिल्ली। फो.: 011-47566672
12. बुधनिया बुक शॉप, यू-86, दिल्ली। फो.: 9810174248

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
विजय कुमार

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
पार्थ सेनगुप्ता

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार, नीलकमल अरोड़ा

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 35.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेलः editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि. (कासना शाखा), आई-57, साइट-5, सूरजपुर कासना, ग्रेटर नोएडा-201310 (उ.प्र.) से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी
सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-5; अंक-6; नवंबर-दिसंबर, 2020

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा* — 2
विरासत — **शिक्षा के आदर्शों में परिवर्तन**—*चंद्रधर शर्मा गुलेरी* — 4
आलेख — **लेखकों के लेखक महात्मा गांधी**—*गिरीश्वर मिश्र* — 8
लेख — **स्वामी विवेकानंद : दलितोत्थान के प्रथम मसीहा** —*कमल किशोर गोयनका* — 11
इतिहास — **अंग्रेजी राज के प्रथम विद्रोही राजा नारायण सिंह** —*कृष्ण किसलय* — 14
आलेख — **प्राचीन भारत में ईंट**—*डॉ. राकेश कुमार सिन्हा 'रवि'* — 17
आलेख — **ज्ञानपीठ है जंगमवाड़ी मठ**—*निरंकार सिंह* — 20
बाल सिनेमा — **जागृति : रुपहले पर्दे पर प्रदर्शित एक पाठ्यपुस्तक** —*रमेश कुमार सिंह* — 23
लोकरंग — **बुंदेली उत्सवधर्मिता**—*डॉ. बहादुर सिंह परमार* — 26
आलेख — **मराठी भाषा से जुड़ी हुई पत्रिका और पुस्तकें** —*कालिदास बा. मराठे* — 30
शब्द ज्ञान — **आओ भारतीय भाषाएँ सीखें** — 32
स्मृति — **बाल साहित्य के सेवक निरंकार देव**—*सीमा 'असीम' सक्सेना* — 34
स्मृति — **कपिला वात्स्यायन : एक कलाविद विदुषी**—*अरविन्द कुमार* — 37
स्मृति — **रेणु की कलम कैमरा थी**—*निर्देश निधि* — 39
कहानी — **एक किशोरी फुलझड़ी-सी**—*टी. पद्मनाभन* — 42
आलेख — **लॉर्ड मैकाले की कैद से बचपन को मुक्ति दिलाती नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति**—*डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'* — 46
पुस्तक समीक्षा — 49
साहित्यिक गतिविधियाँ — 63

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 : दिशा और दृष्टि

वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली औपनिवेश काल की देन है। जब हम पराधीन थे तब आक्रांताओं ने अपने औपनिवेशिक हितों की रक्षा के लिए इस शिक्षा प्रणाली को प्रारंभ किया था। उस समय शिक्षा के लक्ष्य और विज़न (दृष्टि) सीमित थे। अब हम एक स्वतंत्र देश हैं, पर स्वतंत्रता के बाद लगभग 74 वर्षों तक भी हम अपने देश की शिक्षा प्रणाली को स्वतंत्र देश की आशाओं और आकांक्षाओं के साथ नहीं जोड़ सके। शिक्षा को सामाजिक उद्‌देश्यों, भारतीय परिवेश और राष्ट्रीय गौरव के साथ जोड़ने की हमारी पहल अकादमिक और राष्ट्रीय स्तर पर एक अच्छी बहस का विषय तो रही, पर वह प्रभावी परिणाम नहीं दे सकी।

वस्तुतः स्वतंत्रता के बाद भारतीय शिक्षा वैश्विक और आंतरिक दवाबों में रही। वैश्विक स्तर पर ब्रिटेन के अलावा अमेरिका भी नहीं चाहता था कि भारत अपनी स्वयं की ऐसी शिक्षा नीति बनाए जो राष्ट्रीय स्वाभिमान और गौरव को बढ़ाने वाली हो। 1942 में अमेरिका के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने ब्रिटेन के राजदूत को यह सलाह दी कि ब्रिटेन भारत को कब स्वतंत्र करे। यह तो उसका विषय है, पर ब्रिटेन भारत के साथ कुछ इस तरह का व्यवहार करे जिससे भारत भविष्य में 'पश्चिम की छत्रछाया' में बना रहे। यह तभी संभव था जब भारत औपनिवेशिक काल की शिक्षा प्रणाली को चालू रखे।

स्वतंत्रता के बाद देश के अंदर भी एक ऐसा वर्ग था जो औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली को बनाए रखना चाहता था। उस वर्ग के दिमाग में कैंब्रिज और ऑक्सफोर्ड इतनी गहराई से जड़ें जमा चुके थे कि वे शैक्षिक क्षेत्र में किसी नई संकल्पना का विचार ही नहीं कर सके। एक अन्य तरीके से इस वर्ग का साथ दिया वामपंथी वैचारिक सोच ने। शिक्षा क्षेत्र में वामपंथी चिंतन से सर्वाधिक प्रभावित वह विचार हुआ जो शिक्षा को राष्ट्रीय और सांस्कृतिक सरोकारों के साथ जोड़ना चाहता था। वामपंथी विचारकों ने भारतीय इतिहास लेखन को विकृत किया। हिंदू शासकों, उनके पराक्रम तथा संघर्ष को सही और वास्तविक अर्थों में सामने नहीं आने दिया। पूर्वाग्रहों से युक्त शोध को प्रोत्साहित किया। पाठ्‌यक्रमों में उन संदर्भों और ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा की गई जो राष्ट्रीय मनोबल को प्रोत्साहित करने वाले थे। वामपंथी लेखन भारतीय जीवन, परंपराओं, मूल्यों और आस्थाओं के प्रति उपहासपूर्ण रहा।

यूरोपियन सोच और वामपंथी विचारों का परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्रता के बाद गठित आयोगों और दो राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों (शिक्षा आयोग जिसे कोठारी आयोग भी कहते हैं, 1964-66 के प्रतिवेदन के आधार पर भारत सरकार द्वारा घोषित 24 जुलाई, 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986-शिक्षा की चुनौती यथा संशोधित 1992) की अनुशंसाओं के बाद भी हम देश में प्रचलित शिक्षा प्रणाली में आंशिक संशोधन ही करते रहे, पर व्यापक स्तर पर शिक्षा में किसी आमूलचूल परिवर्तन की पहल नहीं कर सके।

शिक्षा का मूल स्वरूप राष्ट्रीय होता है। वह देश की संस्कृति से जुड़ी रहती है। डेलर्स का प्रसिद्ध कथन है कि 'शिक्षा की जड़ें संस्कृति में तथा प्रतिबद्धता विकास में होना चाहिए।' यदि शिक्षा में राष्ट्रभाषा नहीं है, उसका सामाजिक सरोकार से कोई संबंध नहीं है और वह सांस्कृतिक चेतना की संवाहक नहीं है तब शिक्षा की कोई उपादेयता भी नहीं है। इस आधार पर यदि हम 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' पर विचार करें तब हम पाएँगे कि यह नीति राष्ट्रीय आकांक्षाओं को पूरा करने वाली है। जो दृष्टि शिक्षा की प्रेरक शक्ति होती है, वही दृष्टि राष्ट्र के भविष्य के स्वरूप का भी निर्धारण करती है। अतः हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति के उन आधारभूत सिद्धांतों और प्रेरक शक्तियों को जानना चाहिए जो भविष्य के भारत के स्वरूप का निर्धारण करेंगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में उन मूलभूत पथ-प्रदर्शक सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है जिनके आधार पर यह नीति बनाई गई है। यह सही है कि शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्‌देश्य अच्छे इनसान का विकास करना है, पर उसके लिए व्यापक, गतिशील और समावेशी शिक्षा प्रणाली अपेक्षित है। इस दृष्टि से राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली ने कुछ आधारभूत सिद्धांत स्वीकार किए हैं जो शिक्षा नीति निर्माण में मार्गदर्शक का काम करेंगे। कुछ प्रमुख आधार सिद्धांत निम्न हैं—

प्रत्येक बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उसके विकास हेतु प्रयास करना। बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना। लचीली, बहुविषयक और समग्र शिक्षा का विकास। अवधारणात्मक समझ पर जोर। रचनात्मक और तार्किक सोच को प्रोत्साहन। नैतिक मानवीय और संवैधानिक मूल्य। बहुभाषिकता के सतत मूल्यांकन पर जोर। स्कूली शिक्षा से उच्चतर शिक्षा तक सभी स्तरों के शिक्षा पाठ्‌यक्रम में तालमेल। शिक्षकों और संकाय को सीखने की प्रक्रिया का केंद्र मानना। भारतीय जड़ों और गौरव से बँधे रहना। एक मजबूत, जीवंत और सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में पर्याप्त निवेश आदि।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का विज़न जिसे हम शिक्षा की दृष्टि कह सकते हैं, बहुत स्पष्ट है। वह अपने आप को पश्चिम के आभामंडल से निकालकर, अपनी स्वयं की स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील है। उसकी प्रेरणा पश्चिम नहीं, अपितु प्राचीन भारतीय सनातन मूल्य और ज्ञान-परंपरा है। इस रूप में वह भारतीय सनातन मूल्यों से जुड़ती है। पश्चिम के ज्ञान का विरोध नहीं है। ज्ञान वैश्विक है, पर अपनी पहचान स्थापित करने का आग्रह अवश्य है। यह इस बात से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है कि 'प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में यह नीति तैयार की गई है।' भारतीय ज्ञान-परंपरा में शिक्षा को सात्विक और पवित्र माना है जिसका अंतिम लक्ष्य 'सा विद्या या विमुक्तये' है अर्थात विद्या (शिक्षा) वह है जो हमें सभी बंधनों से मुक्त करे। इस कथन की दार्शनिक व्याख्या तो यह है कि शिक्षा (विद्या) हमें सभी सांसारिक बंधनों से मुक्ति दिलाए अर्थात आत्ममुक्ति का साधन बने, पर इसका लौकिक अर्थ यह है कि शिक्षा हमें अज्ञान, अभाव, विषाद और भय से मुक्त करे अर्थात हम ज्ञानमय जीवन जिएँ। शिक्षा ज्ञान का स्रोत है। वह व्यक्ति के कौशल विकास का आधार है। हम अपने जीवन को सुखमय बना सकें, यह शिक्षा की दृष्टि (विज़न) है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में माना गया है कि शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमताओं के विकास पर जोर देगी। शिक्षा नीति का यह विचार हमें विवेकानंद के इस प्रसिद्ध कथन का स्मरण कराता है कि "शिक्षा का उद्‌देश्य, मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णताओं को अभिव्यक्त करना है।" अर्थात शिक्षा एक माध्यम है जो व्यक्ति के अंदर की पूर्णता को व्यक्त करने में सहायक होती है। जब हम भारतीय मूल्यों से विकसित शिक्षा की बात करते हैं तब हम भारत केंद्रित शिक्षा की ओर बढ़ते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के प्रारूप, जो 2018 में तैयार हुआ था, में कहा गया है कि 'The National Education Policy 2018 envisions an India-centred education system that contributes directly to transforming our nation

sustainably into an equitable and vibrant knowledge society, by providing high quality education to all.' (राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2018 ऐसी भारत केंद्रित शिक्षा प्रणाली की कल्पना करती है जो प्रत्यक्ष रूप से अपने देश को धारणीय, जीवंत ज्ञान एवं न्यायसंगत समाज के रूप में रूपांतरित करेगी।)

आज शिक्षा की समस्या यह है कि उसमें पाश्चात्य चिंतन, मान्यताएँ, अवधारणाएँ तो हैं, पर भारतीय चिंतन, परंपराएँ और अवधारणाएँ नहीं हैं। इसका परिणाम यह है कि छात्र प्रत्येक विषय में यही पढ़ता है कि इस विषय के मूल सिद्धांत पश्चिम के विचारकों ने दिए हैं। भारत के विचारकों ने कोई सिद्धांत नहीं दिए। हम पश्चिम के विचारकों के लेखन के आधार पर विषय को पढ़ते और पढ़ाते हैं। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि छात्र भारत की विशाल ज्ञान-परंपरा से अनजान रहा। उसे ज्ञात ही नहीं कि प्राचीन भारत ज्ञान का खज़ाना है। भारत केंद्रित शिक्षा की आवश्यकता के संदर्भ में विचारक प्रायः डॉ. दौलत सिंह कोठारी के इस कथन को उद्धृत करते हैं कि 'भारतीय बुद्धिजीवियों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि उनका गुरुत्व केंद्र यूरोप है, जिसे शीघ्रातिशीघ्र भारत केंद्रित करने की आवश्यकता है।' स्वाभाविक है कि हम जिस गुरुत्व केंद्र में रहेंगे, उसके प्रभाव में हमारा चिंतन, मनन और लेखन होगा। यदि हमारा गुरुत्व केंद्र पश्चिम है तो हम पश्चिम की चिंतन धारा के अनुरूप सोचेंगे। यदि हमारा गुरुत्व केंद्र भारत है तब हम भारत की दृष्टि से विचार करेंगे। तब हम प्राचीन चिंतन, परंपरा और ज्ञान-विज्ञान की धारा से परिचित होंगे। उससे प्रभावित होंगे और उस पर गर्व भी करेंगे। हमारी सोच बदलेगी। वर्तमान शिक्षा नीति इस दिशा में एक प्रयास है।

शिक्षा नीति में यह कहा गया है कि भारत को वैश्विक स्तर पर ज्ञान की महाशक्ति बनाना है। आज का युग ज्ञान का युग है। यदि हम ज्ञान के क्षेत्र में पिछड़ जाएँगे और ज्ञान में निपुण नहीं हुए तो हम दूसरों की ओर देखते रहेंगे। ज्ञान शक्ति है जो हमें पहचान और ऊर्जा देता है। ज्ञान के परिणामस्वरूप हमारा आत्मविश्वास बढ़ता है और आत्मगौरव का विकास होता है। ज्ञान में विश्व को बदलने की शक्ति है। विचारक मानते हैं कि भविष्य में युद्ध ज्ञान द्वारा, ज्ञान के लिए, ज्ञान के क्षेत्र में होगा। अमेरिकी पत्रकार फ्रीडमैन ने अपनी पुस्तक 'द वर्ल्ड इज फ्लैट' में वर्तमान में दुनिया के तेजी से बदलने के जिन दस कारणों की चर्चा की है उनमें से नौ कारण तकनीक और सूचना क्रांति से जुड़े हैं। केवल एक कारण राजनीतिक है। यह ज्ञान क्षेत्र की सच्चाई है। शिक्षा नीति इस क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ने का संकल्प व्यक्त करती है। इसके लिए वह शोध और नवाचार पर जोर देती है। शोध को प्रोत्साहित करने के लिए 'राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन' जो स्वायत्त संस्था होगी, की स्थापना की संस्तुति की गई है। शिक्षा नीति में आर्टिफिशियल इंटेलीजेंसी के क्षेत्र में आगे बढ़ने की भी योजना है।

आज स्थिति यह है कि अनुसंधान के क्षेत्र में हम बहुत पीछे हैं। शोध के लिए जहाँ इजराइल में जी. डी.पी. का 4.3 प्रतिशत, दक्षिण कोरिया में 4.2 प्रतिशत, अमेरिका में 2.8 प्रतिशत तथा चीन में 2.1 प्रतिशत खर्च किया जाता है वहाँ भारत में 0.69 प्रतिशत खर्च किया जाता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि वर्ल्ड इंटलेक्चुअल प्रोपर्टी ऑर्गनाइजेशन के आँकड़ों के अनुसार जहाँ चीन ने पेटेंट के लिए 13,38,503; अमेरिका ने 6,05,571 प्रार्थनापत्र दिए हैं वहाँ भारत ने केवल 45,057 ही प्रार्थनापत्र दिए हैं।

शिक्षा नीति भारतीय होने पर गर्व अनुभव करने के लिए है। यह गर्व केवल विचारों में नहीं, अपितु हमारे व्यवहार, बुद्धि और कार्यों में भी व्यक्त होना चाहिए। सामान्यतः हम सेमिनारों, संगोष्ठियों, भाषाओं और आलेखों में भारत की महानता और उसकी दीर्घ-सांस्कृतिक उपलब्धियों एवं उच्चतम आदर्शों की चर्चा बहुत उत्साह से करते हैं, पर हमारे व्यवहार, सोच और कार्य में कहीं-न-कहीं अपने को तुलनात्मक रूप से कमतर आँकने की ग्रंथि बैठी हुई है। शिक्षा नीति इस ग्रंथि को समूल नष्ट करने का प्रयत्न है। जैसे-जैसे हम ज्ञान, विज्ञान और अनुसंधान के क्षेत्र में आगे बढ़ते जाएँगे, यह ग्रंथि स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। शिक्षा नीति में एक ऐसा भारतीय होने की सोच है जो मानव अधिकारों की चिंता करेगा। वैश्विक कल्याण के संबंध में सोचेगा और सही अर्थों में एक वैश्विक नागरिक बनेगा। शिक्षा नीति में यह भाव छिपा हुआ है कि एक अच्छा नागरिक ही अच्छा वैश्विक नागरिक बन सकता है जिसकी आस्था स्वयं की संस्कृति और परंपराओं में हो, वही दूसरों की संस्कृति और परंपराओं का सम्मान कर सकता है।

ज्ञान की दृष्टि से भारत बहुत समृद्ध देश रहा है। शिक्षा, पर्यावरण, स्वास्थ्य, ऋतुओं के अनुसार जीवन आदि के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय ज्ञान आज भी उपयोगी है। यह ज्ञान किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। आदिवासी क्षेत्रों में भी ज्ञान फैला हुआ है। इसके अतिरिक्त गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, योग, वास्तुकला, चिकित्सा, कृषि, इंजीनियरिंग, भाषा विज्ञान, राजव्यवस्था आदि क्षेत्रों तक विस्तृत है। मानव सभ्यता का इतिहास बतलाता है कि तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला आदि विश्वविद्यालय विश्व के प्राचीनतम विश्वविद्यालय थे। अनेक विदेशी यात्रियों जिन्होंने समय-समय पर भारत की यात्रा की, ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि भारत में ज्ञान-विज्ञान की समृद्ध परंपरा रही है। कई विदेशी यात्रियों ने भारतीय विश्वविद्यालय में अध्ययन भी किया है। ह्वेनसांग (चीन) ने नालंदा विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म के साथ-ही-साथ चिकित्साशास्त्र, दर्शन, तर्कशास्त्र, गणित, ज्योतिष और व्याकरण का भी अध्ययन किया। अलबरूनी ने भी भारत में संस्कृत, प्राकृत, विज्ञान, साहित्य, दर्शन और धर्म का अध्ययन किया।

शिक्षा नीति-2020 में यह सम्मिलित है कि इस पूरे पारंपरिक और अन्य ज्ञान को स्कूल पाठ्यक्रम में जहाँ भी प्रासंगिक हो, वहाँ वैज्ञानिक और सटीक तरीके से जोड़ा जाए। शिक्षा नीति का यह भी सुझाव है कि भारतीय ज्ञान प्रणालियों पर एक आकर्षक पाठ्यक्रम तैयार किया जाए जो वैकल्पिक हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 दिशा और दृष्टि पर विचार करते समय प्रसंगवश एक संदर्भ का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। हमें ध्यान होगा कि लॉर्ड मेकोले (टॉमस बेबिंग्टन मेकोले) ने 185 वर्ष पूर्व सन् 1835 में बहुत उपहासपूर्ण ढंग से कहा था कि "ऐसा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि संस्कृत भाषा में लिखी गई सभी पुस्तकों की ऐतिहासिक जानकारी एकत्रित करने पर वह इंग्लैंड की एक प्राथमिक पाठशाला के लिए तैयार की गई संक्षिप्त जानकारी का समावेश करने वाली पुस्तक से भी कम होगी।" राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में संस्कृत भाषा को लेकर जो उल्लेख है, मुझे लगता है कि वह मेकोले के कथन का समुचित उत्तर है। यह बात अलग है कि उत्तर देने में हमें 185 वर्ष लगे। शिक्षा नीति-2020 कहती है, "संस्कृत संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित एक महत्वपूर्ण आधुनिक भाषा होते हुए भी इसका शास्त्रीय साहित्य इतना विशाल है कि सारे लैटिन और ग्रीक साहित्य को भी यदि मिलाकर इसकी तुलना की जाए तो भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता।"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की दिशा और दृष्टि स्पष्ट है। वह नए भारत की अवधारणा को साकार करने के लिए है। नया भारत ज्ञानयुक्त, समृद्ध, संपन्न और समर्थ भारत होगा, जो आत्मविश्वास और आत्मगौरव की भावना से पूर्ण होगा। शिक्षा नीति की यह विशेषता है कि इसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि सभी को समान रूप से सर्वोच्च गुणवत्ता से युक्त शिक्षा उपलब्ध हो। तभी तो ज्ञानयुक्त समाज बन सकेगा। यह सही है कि नीतियाँ मार्गदर्शक सिद्धांतों का पुंज होती हैं, उनमें बाध्यता नहीं होती, पर इस शिक्षा नीति के अनुरूप शिक्षा क्षेत्र में आवश्यक बदलाव के लिए सरकार की तत्परता यह विश्वास दिलाती है कि शिक्षा नीति में जिन लक्ष्यों का निर्धारण किया है, हम निश्चित ही उन्हें प्राप्त कर सकेंगे।

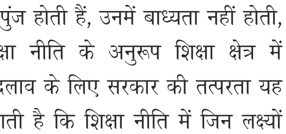

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

शिक्षा के आदर्शों में परिवर्तन

पहले यह माना जाता था कि विद्या कोई बाहरी चीज है जिसे गुरु पढ़ने वाले के हृदय में घुसेड़ता है। पढ़ने वाले का हृदय कोरा कागज है और उस पर गुरु नए अक्षर और नए संस्कार अंकित करता है। उसके खाली मस्तिष्क में या पोल मन में कोई बहुमूल्य पदार्थ बाहर से भरा जाता है जैसा कि रहीम ने एक सुंदर उपमा से कहा है—

रहिमन विद्या पढ़न में, बालक झोंका खाय।
तन घट अरु विद्या रतन, भरत हिलाय हिलाय॥

अथवा जैसा वैदिक-काल की एक पुरानी गाथा कहती है—

यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥

(जैसे कुदाली से खोदते-खोदते आदमी को पानी मिल जाता है वैसे सेवा करने वाले को गुरु में से विद्या मिलती है)।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी

हिंदी के प्रमुख रचनाकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने कहानी, निबंध, व्यंग्य, कविता, आलोचना और संस्मरण लिखे। साथ ही समालोचक और नागरी प्रचारिणी पत्रिका का संपादन भी किया। उनकी प्रमुख कृति 'गुलेरी रचनावली' थी। उनका कार्यक्षेत्र खगोल विज्ञान, ज्योतिष, धर्म, भाषा विज्ञान, इतिहास, शोध आदि अनेक दिशाओं में फैला हुआ था।

पर आदर्श अब बदल गया है। विद्या कोई बाहरी चीज नहीं है जो गुरु को बाहर से ठूँसकर भरनी पड़ती है। गुरु का काम शिष्य के हृदय की सोती हुई शक्तियों को जगाना है, उसके सहज और परंपरागत संस्कारों को चिताना है। पीढ़ियों से पशुत्व और मनुष्यत्व के जो भाव उसके मस्तिष्क में हैं उन्हें उत्तेजित करना, उनमें जो हानिकारक हों उन्हें मिटाना और जो अच्छे हों उन्हें प्रबल कर देना—यह गुरु का काम है। गुरु धोबी के गधे को 'जौनपुर का काजी' नहीं बना सकता। कथा के अनुसार, वह फिर रस्सी देखकर दौड़ा चला जाएगा। गुरु बाहर से कुछ नहीं डालता, भीतर के अचेतन बलों को चमका देता है। गुरु का काम जिला करने वाले का या रत्नों को घिसने वाले का है, नई वस्तु गढ़ने वाले का नहीं। भवभूति इस सत्य को कुछ-कुछ कह गया है—

वितरति गुरु प्राज्ञे विद्यां तथैव, तथा जडे
न च खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति च तयोर्भूर्यान् 'भेदः' फलं प्रति तद्यथा,
प्रभवति शुचिर्बिंबोद्ग्राहे मृणिर्न मृदां चयः॥

जिसकी आँखों पर पट्टी बँधी हो, उसे जैसे सड़क की लीक पर छोड़ दिया और यह कह दिया कि इधर दाहिने हाथ जाना और उधर बाएँ हाथ, और उपनिषदों की भाषा में, वह 'पंडित मेधावी गांधार देश पहुँच जाएगा।' वैसे ही गुरु मार्ग दिखा सकता है, अज्ञान तिमिरांध की आँखें वह ज्ञानंजन शलाका से खोल सकता है, जनमांध को वह आँख नहीं दे सकता। विद्यार्थी अनगढ़ लकड़ी के कुंदे नहीं होते, वे पशु होते हैं, मनुष्य होते हैं। प्रकृति उन्हें शिक्षा दे रही है। गुरु का काम केवल प्रकृति की सहायता करना है, बल्कि बालक निचले नहीं बैठ सकते। जो गुरु उन्हें चित्र की तरह निःस्पंद बिठाकर स्थिरोपवेश बनाना चाहता है, वह बड़ी भूल करता है। वह प्रकृति की चलती चक्की में कंकर डालता है, प्रवृत्ति के स्वाभाविक रस के स्रोत को सुखाता है। चतुर गुरु वह है जो उनकी इस प्रवृत्ति को उचित मार्ग में जोतकर वनस्पति-विज्ञान, पदार्थ-परिचय और सहयोगिता की शिक्षा देता है। पहले यह माना जाता था कि सीखने

वाले सिखाया जाना नहीं चाहते। रीते मुँह पाठशाला में जाते हैं और छूटते ही तीर की तरह भागते हैं। खेलना वे चाहते हैं। पढ़ना नहीं। खेलने से खराब होने की धमकी और पढ़ने से नवाब होने की प्रलोभन कहावतों में उनकी आँखों के सामने नचाई जाती थी। अब यह सब बदल गया है। खेलना बड़ी भारी शिक्षा है। जितने मनुष्यत्व के अंग

"विद्यार्थी पात्र (बरतन) माना जाता था। पर कुछ खेदने वाले का-सा परिश्रम करने की उससे आशा की जाती थी। ऊपर की वैदिक भाषा में शुश्रूषु पर ध्यान दीजिए। जिस समाज में गुरु कुछ वेतन नहीं पाते थे, जहाँ विद्या का बेचना पाप था, वहाँ सेवा में शिष्यों को जोतना अर्थशास्त्र के अनुसार था। गुरु शिष्य के मन को सुधारने में जो श्रम करता था उसका विनिमय (क्योंकि बदला अवश्य चाहिए, चाहे माहवारी तनख़्वाह हो, चाहे खेती की रखवाली और चाहे समावर्तन के पीछे गुरुदक्षिणा की आशा) छात्रों की मेहनत से हो जाता था। संस्कृत का इतिहास इस सेवा के कितने ही उल्लेखों से भरा पड़ा है।"

खेल में और खुले में सीखे जाते हैं उतने गुरु जी की तंग कोठरी में पट्‌टी और खड़िया से नहीं। एक बात में पहले पंडित बनाने का यत्न किया जाता था, अब मनुष्य बनाने का यत्न आदर्श माना जाता है। यह दूसरी बात है कि आजकल की शिक्षा में कुछ दोष बिना बुलाए आ घुसते हैं, जैसे पहले की शिक्षा में गुण अकस्मात् आ जाते थे। यहाँ केवल आदर्शों का विचार है, व्यावहारिक गुण-दोष का नहीं। यही दावा है कि नई आदर्श प्रणाली जैसी चाहिए वैसी यहाँ चल रही है। प्रत्युत शिक्षा प्रणाली में यह देश बड़ी असमंजस में पड़ा हुआ है। न पुरानी चाल के अच्छे ढंग ही रहे हैं और न नई के गुण अभी चल सके हैं। इस लेख में केवल सिद्धांतों का विचार है।

विद्यार्थी पात्र (बरतन) माना जाता था। पर कुछ खेदने वाले का-सा परिश्रम करने की उससे आशा की जाती थी। ऊपर की वैदिक भाषा में शुश्रूषु पर ध्यान दीजिए। जिस समाज में गुरु कुछ वेतन नहीं पाते थे, जहाँ विद्या का बेचना पाप था, वहाँ सेवा में शिष्यों को जोतना अर्थशास्त्र के अनुसार था। गुरु शिष्य के मन को सुधारने में जो श्रम करता था, उसका विनिमय (क्योंकि बदला अवश्य चाहिए, चाहे माहवारी तनख़्वाह हो, चाहे खेती की रखवाली और चाहे समावर्तन के पीछे गुरुदक्षिणा की आशा) छात्रों की मेहनत से हो जाता था। संस्कृत का इतिहास इस सेवा के कितने ही उल्लेखों से भरा पड़ा है। कहीं गुरु बरसते पानी में शिष्य को अपनी बह जाने वाली खेत की मेंड बना देता है, कहीं वह चार सौ दुर्बल गायें सौंपकर उससे कहता है कि उन्हें बिना हजार किए जंगल से मत लौटना, कहीं अपने वीर शिष्यों के द्वारा अपने पराजय का बदला किसी अभिमानी राजा से निकालना चाहता है और गुरुपत्नियाँ कहीं अपनी भूषणप्रियता से राजमहिषी के कुंडल मँगवाती हैं, विद्यार्थियों को गौओं का दूध पीना तो दूर रहा, बछड़ों के मुँह पर लगा हुआ पीने से रोकती हैं, कहीं रगड़कर इतनी मजदूरी लेती हैं कि विद्यार्थी पढ़ने को प्रणाम करके हिमालय में तपस्या करने चला जाता है और शिव जी को प्रसन्न करके जगत भर से कहलाता है कि हताः पापिनिना वयम्। हमें पापिनी ने मार डाला। और विद्यार्थी पंडित होकर किस प्रकार उस अपनी कठोर सेवा को प्रेम से याद करते हैं। मुरारि 'गुरुकुल क्लिष्ट' होने का अभिमान करता है और श्रीहर्ष अपनी कविता की गाँठें श्रद्धा से गुरुसेवा करने वालों से खुलवाने की आशा करता है। पर इतना पानी भरने और लकड़ियाँ ढोने पर भी जिसे कुछ आ गया, उसे आ गया, गुरु का कुछ दायित्व नहीं। अब सारा परिश्रम गुरु के सिर पर है। यदि विद्यार्थी न समझे तो उसका दोष है, समझाने का ढंग नहीं आता। वह बालक-मनोविज्ञान से अजान है। उसे प्रत्येक बालक के इतिहास से, उसके वंशगत विचारों से, उसकी रुचियों से, जानकार होना चाहिए, जिससे वह उनका सुधार कर सके।

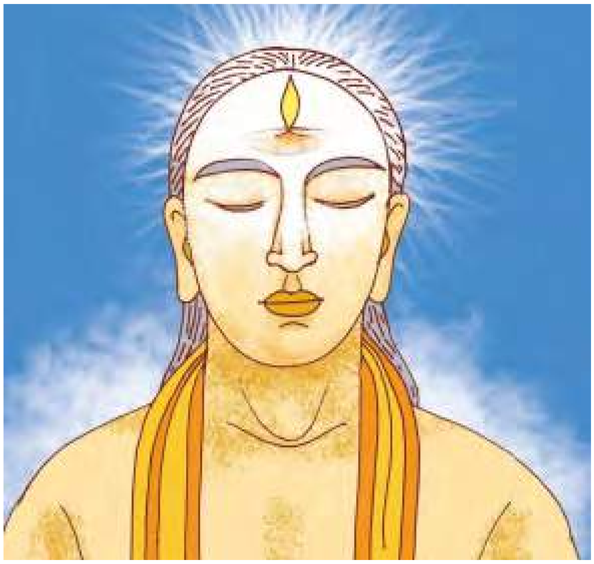

यह संभव नहीं कि हर किसी को हर कोई पढ़ा ले। तभी तो कहा गया है कि 'मातृमान्', 'पितृमान्', 'आचार्यमान्' 'पुरुषो वेद'—जिसे माता, पिता और पीछे आचार्य सिखाए, वही सीख सकता है। इसी से तो कहा गया है कि 'पितैबोधनयेत् पुत्रम्' पिता ही पुत्र को सिखाए। जितनी बालक की प्रवृत्तियों की जानकारी माता को और उसके पीछे पिता को होती है, उतनी बाहर के किसको हो सकती है! परंतु सभ्यता के कारण काम करने की शक्ति इतनी बिखर जाती है कि प्रत्येक पिता अपने पुत्र को नहीं पढ़ा सकता और यह श्रम-विभाग का भी एक उदाहरण है कि सिखाने वालों का एक समूह पृथक बन जाए। पुराने लोग अपने खेत में अन्न उपजाकर अपने लिए आप ही कपड़ा बुनते और लकड़ी काटने के लिए आप ही कुल्हाड़ी बनाकर चौकियाँ बना लेते हों, पर अब किसान और जुलाहा, लोहार और खाती का काम

न्यारा-न्यारा है। पर पढ़ाने के काम में इतनी छीछालेदर है जितनी किसी में नहीं। रोगी अपनी चिकित्सा आप नहीं करता, न वह चाहता है कि मेरे पुत्र की चिकित्सा अनाड़ी डॉक्टर करे। अपना रुपया हम ऐसे कोठीवाले के यहाँ रखना नहीं चाहते, जो धन विनियोग के सिद्धांतों को न जानता हो। अपना मुकदमा हम स्वयं कचहरी में नहीं ले जाते और न ऐसे वकील को सौंपते हैं जो पैरवी न कर सकता हो। पर अपने बालकों की शिक्षा का भार हम या तो स्वयं उठाने का बहाना करते हैं या ऐसे लोगों को सौंपते हैं जो डॉक्टर या वकील या कुछ और बनने में अयोग्य सिद्ध होकर लड़के पढ़ाना प्रारंभ करते हैं। जो और पेशों में सफलता नहीं पा सकते हैं, उनके लिए मास्टरी का द्वार खुला है, ऑफिसों के क्लर्क अपने कलम रगड़ने से फुरसत के समय को लड़के पढ़ाने में लगाना चाहते हैं और यह एक साधारण उक्ति है कि और रोजगार नहीं हुआ तो चार लड़के पढ़ाकर गुजारा करेंगे। शाहजहाँ ने भी अपनी कैद के दिनों में अपने सुपुत्र औरंगजेब से समय काटने के लिए पढ़ाने को लड़के माँगे थे।

विश्वविद्यालय के नए उपाधिकारियों को गुरु बनाना, नाई का हाथ जम जाए इसलिए अपना सिर छिलवाना है। यों रटाई होती है, पढ़ाई नहीं। पढ़ाना भी एक कला है जिसे पूरी तरह न जानने वाला निभा नहीं सकता। यों तो सिखाना कविता की तरह ईश्वर की देन है, सौ-सौ ट्रेनिंग स्कूलों में धक्के खाने पर भी वह योग्यता नहीं हो सकती जो 'जन्म के गुरु' को होती है, पर आजकल पढ़ाना भी पढ़ना चाहिए। पढ़ाने की परीक्षा होती है। समझाने का विज्ञान जानना पड़ता है। अच्छे पढ़ाने वालों का ढंग सीखना होता है। बालक-मनोविज्ञान समझना होता है। विकासवाद के तत्व टटोलने पड़ते हैं। समाजशास्त्र और प्राणिशास्त्र, ज्ञानतंतुशास्त्र और आचारशास्त्र का मनन करना होता है। यह कोई आवश्यक बात नहीं कि अच्छा विद्वान अच्छा अध्यापक हो। कभी-कभी इसके बिलकुल विपरीत होता है। विद्वान अपने को बालकों की बुद्धि के पलड़े पर नहीं बिठा सकता, वह चौमंजिले से खड़ा-खड़ा बालकों के क्षितिज के ऊपर देख सकता है। बालक छोटी-सी झड़बेरी के फल तोड़ सकते हैं, ऊँचे आम के नहीं।

'मारना' गुरुओं का एक अमोघ शस्त्र है। जो बात समझाने से किसी शिष्य के मन में न बैठे, मारकर बिठाई जाए। हजरत सुलेमान कह गए हैं कि 'लाठी को बचाओ और बालक को बिगाड़ो।' मनुस्मृति में शिष्य और पुत्र के मारने की मनाही नहीं है और भाष्यकार पतंजलि खंडिकोपाध्याय की चपेटिकाओं को जगह-जगह याद करके एक पुराने श्लोक को उद्धृत करते हैं जिसके अनुसार चोर, क्रुद्ध, गुरु और भयदायक पड़ोस से दूर रहने में ही भलाई कही गई है—

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम्।
दूराच्च भाव्यं दस्युभ्यो दूराच्च कुपितोद्गुरोः॥

एक और स्थान पर उन्होंने गुरु के हाथों को अमृतमय कहा है, परंतु ताड़न में गुण और लाड़ लड़ाने में दोष समझने की पुरानी कहावत है—

सामृतैः पाणिर्भिन्ति गुरुवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषासतडनाश्रयिणो गुणाः॥

'जोशी की चोट और विद्या की पोट' वाली कहावत के बल पर गुरु की 'मूरख समझावनी' राजदंड से भी बढ़कर चला करती थी। वर्तमान शिक्षा-विज्ञान ने यह प्रतिमा भी तोड़ दी है। आजकल बालक को मारना एक कायरपन है, जिसका सहारा यह जानकर कि बालक लट्ठ नहीं मार सकता, केवल कापुरुष ही लेते हैं। आचरण संबंधी अपराधों में शासन के लिए मारने की उपयोगिता मानी गई है, पर वह भी भय उपजाने के लिए और दंड की बुद्धि से पीड़ा पहुँचाने और बदला लेने की नीयत से नहीं। अधिक मार से बालक निर्लज्ज हो जाते हैं और बुद्धि के दोषों, न समझने और न याद रखने आदि पर शारीरिक दंड का प्रयोग अनुचित है। गुरु की आँख का दंड, साथियों के सामने हँसे जाने का दंड और गुरु प्रसाद का पुरस्कार अब इस प्राचीन प्रथा को निर्दय और अनावश्यक सिद्ध करने जाते हैं।

यह कहा जा चुका है कि पहले पंडित बनाने का यत्न किया जाता था, अब मनुष्य बनाने का। पहले भाषा के जानने पर अनावश्यक जोर दिया जाता था, अब विषयों पर ध्यान है। लैटिन या ग्रीक, या संस्कृत का कोश और व्याकरण की रटाई के भरोसे पढ़ना विद्या की सीमा थी। कितने वर्ष व्यर्थ इस अलूनी सिला को चाटने में बीतते थे। अब भाषा पढ़ाई जाती है तो वह ज्ञान का लक्ष्य नहीं मानी जाती, ज्ञान का साधन मानी जाती है। भाषा 'भाषा' की तरह कान और मुख को सिखाई जाती है, तोते की तरह स्मृति को नहीं। न अधिकारी और अनधिकारी का भेद था। उदार शिक्षा और विशिष्ट अभ्यास में कोई अंतर नहीं किया जाता था। संस्कृत भाषा को भाषा समझकर नहीं पढ़ा जाता था, परंतु प्रत्येक मनुष्य ही नागोजी भट्ट के लच्छेदार परिष्कारों में उलझकर रात बिताकर फिर सवेरे जहाँ से चला वहीं लंघाई के भाड़े की कुटिया पर खड़ा मिलता था। तभी तो

ज्ञानी पश्चाताप करते थे कि काल के आने पर 'डुकृञ करणें' नहीं बचाता। जो समय शब्दों में बीतता था, वह भावों में लगाया जाता है। गणित, पदार्थ-विज्ञान, रसायन आदि की शिक्षा मनुष्यों में क्यों और कैसे के प्रश्नों को नित्य जगाती जाती है। पहले जो आचार्य ने लिखा है, वह बिना समझे ही मानना होता था, पीछे वर्षों के श्रम के बाद चाहे समझ में आवे, चाहे न आवे। अब गणित के नियम सूत्र या गुर से नहीं सिखाए जाते, पचास सवाल करके स्वयं गुर या सूत्र निकालने के लिए शिष्य तैयार किया जाता है। स्मृति को अनावश्यक बोझ से लादा नहीं जाता, परंतु उसे जागती हुई समझ का जेबी बटुआ बनाया जाता है। इतिहास केवल तारीखों की कड़ी या राजाओं की नामावली नहीं रहा है, वह मनुष्य के व्यवहारों के अनिष्फल परिणामों का अनुशीलन है। भूगोल केवल नदियों और शहरों की सूची नहीं है, वह जल, स्थल और ऋतुओं के परिवर्तन और बस्ती के बदलने के कारणों की खोज है। एक बात में पहले हम छात्रावास में मुँह में भरी

हुई घास की जन्म-भर जुगाली करते थे, अब काम की चीजों को चुन सकने और ले सकने के लिए तैयार कर दिए जाते हैं। अपनी खोज से पाया हुआ एक आलू दूसरे के दिए हुए जिमींकंद से अच्छा है—इस सिद्धांत के लिए छात्र तैयार किए जाते हैं। गुरु का काम साधारण और उदार शिक्षा से मन का मैल धो देना है, पीछे खोजी अपने आप जैसा रंग चाहे वैसा चढ़ा ले।

पहले जल्दी बहुत की जाती थी। आठ वर्ष की नियत अवस्था तक जिसे ब्रह्मचर्य पा सकने की प्रतीक्षा न थी उसका उपनयन पाँच वर्ष की ही उम्र में किया जा सकता था। पतंजलि ने आह भरकर कहा है कि 'वेदमधीत्यत्वरिताः प्रवक्तारो भवंति', और मध्य समय के यूरोप के विश्वविद्यालयों में जितनी छोटी उम्र में डॉक्टर की पदवी पाई जाती थी उतनी ही प्रतिष्ठा होती थी। यहाँ भी यह घमंड मारा जाता है कि 'अमुक ने 12 वर्ष की अवस्था में मैट्रीकुलेशन कर लिया था।' इसका फल वही होता था, जो बाल विवाह का होता है। उधर दादा जी की गोदी में नाती खिलाने का सौभाग्य मिलता है, इधर दूध के दाँत टूटते-न टूटते त्रिकोणमिति होने लगती है। जब सीखने की प्रकृत अवस्था आती है तब कमर झुक और आँख धँस चुकती है। प्रकृति का पृष्ठ खुलने के पहले बंद हो जाता है। वर्तमान शिक्षाशास्त्र समय को यों सरपट दौड़ाने की सम्मति नहीं देता। वह कहता है कि

"अपनी खोज से पाया हुआ एक आलू दूसरे के दिए हुए जिमींकंद से अच्छा है—इस सिद्धांत के लिए छात्र तैयार किए जाते हैं। गुरु का काम साधारण और उदार शिक्षा से मन का मैल धो देना है, पीछे खोजी अपने आप जैसा रंग चाहे वैसा चढ़ा ले।"

जब तक देह का पूरा विकास न हो ले, तब तक मन को लादने का उद्योग न करो, नहीं तो मिठाई के मार से छींके के टूटने का शोकमय नाटक अभिनीत होगा।

एक पाठशाला का वार्षिकोत्सव था। मैं भी वहाँ बुलाया गया था। वहाँ के प्रधान अध्यापक का एकमात्र पुत्र, जिसकी अवस्था आठ वर्ष की थी, बड़े लाड़ से नुमाइश में मिस्टर हादी के कोल्हू की तरह दिखाया जा रहा था। उसका मुँह पीला था, आँखें सफेद थीं, दृष्टि भूमि से उठती नहीं थी। प्रश्न पूछे जा रहे थे। उनका वह उत्तर दे रहा था। धर्म के दस लक्षण वह सुना गया, नौ रसों के उदाहरण दे गया। पानी के चार डिग्री के नीचे शीघ्रता में फैल जाने के कारण और मछलियों की प्राणरक्षा को समझा गया, चंद्रग्रहण का वैज्ञानिक समाधान दे गया, अभाव को पदार्थ मानने-न मानने का शास्त्रार्थ कह गया और इंग्लैंड के राजा हेनरी की स्त्रियों के नाम और पेशवाओं का कुर्सीनामा सुना गया। यह पूछा गया कि तू क्या करेगा। बालक ने सीखा-सिखाया उत्तर दिया कि मैं यावज्जन्म लोक-सेवा करूँगा। सभा 'वाह-वाह' करती सुन रही थी, पिता का हृदय उल्लास से भर रहा था। एक वृद्ध महाशय ने उसके सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया और कहा कि जो तू इनाम माँगे वही देंगे। बालक कुछ सोचने लगा। पिता और अध्यापक इस चिंता में लगे कि देखें यह पढ़ाई का पुतला कौन-सी पुस्तक माँगता है। बालक के मुख पर विलक्षण रंगों का परिवर्तन हो रहा था, हृदय में कृत्रिम और स्वाभाविक भावों की लड़ाई की झलक आँखों में दीख रही थी। कुछ खाँसकर, गला साफकर नकली परदे के हट जाने पर स्वयं विस्मित होकर बालक ने धीरे से कहा, "लड्डू।" पिता और अध्यापक निराश हो गए। इतने समय तक मेरा श्वास घुट रहा था। अब मैंने सुख की साँस भरी। उन सबने बालक की प्रवृत्तियों का गला घोंटने में कुछ उठा नहीं रखा था। पर बालक बच गया। उसके बचने की आशा है, क्योंकि वह 'लड्डू' की पुकार जीवित वृक्ष के हरे पत्तों का मधुर मर्मर था, मरे काठ की अलमारी की सिर दुखाने वाली खड़खड़ाहट नहीं।

(विद्यार्थी; 18 नवंबर, 1914 ईसवी)

लेखकों के लेखक महात्मा गांधी

महात्मा गांधी एक असाधारण व्यक्तित्व वाले शताब्दी पुरुष के रूप में भारतीय समाज में उपस्थित हुए और विश्व मानस को प्रभावित किया। उनको आज महात्मा बुद्ध और ईसा मसीह के बाद मानवता के लिए मार्गदर्शक के रूप में आदर से स्मरण किया जाता है, परंतु परतंत्र भारत में गांधी का होना किसी अद्‌भुत चमत्कार से कम नहीं था। उनके

उदय की परिघटना यह प्रदर्शित करती है कि एक सामान्य व्यक्ति भी अपने काम, अनुभव और रचनाशीलता के बल पर उत्कर्ष के शिखर पर पहुँच सकता है। वह एक ऐसे 'महात्मा' के रूप में उभरे जो सबके लिए समान रूप में ग्राह्य हो गया। इस महान व्यक्तित्व की रचना में पुस्तकों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है और स्वयं उनका बहु आयामी लेखन कार्य विपुल मात्रा में है। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में और अन्यत्र कई बार इसका उल्लेख किया है कि कुछ पुस्तकों ने उनके मन पर अमिट छाप छोड़ी थी और उनके विचारों को ही नहीं बदला, बल्कि पूरे जीवन की ही धारा बदल दी और इस परिवर्तन ने पूरे देश को प्रभावित कर इतिहास रच दिया। गांधी जी अपने द्वारा पढ़ी पुस्तकों के अच्छे विचारों को व्यवहार में लाते थे। उनको अपनाकर उन्हें कर्म के रूप में भौतिक आकार देते थे। गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में स्वयं लिखा है कि वे बचपन में 'श्रवण पितृभक्त नाटक' पढ़कर और 'सत्यवादी हरिश्चंद्र' नाटक देखकर बड़े प्रभावित हुए थे। आगे चलकर प्रौढ़ जीवन में उन्होंने अधिकतर धार्मिक और नीतिपरक साहित्य का अध्ययन किया। प्लेटो की 'अपोलॉजी' और विलियम साल्टर की 'इथिकल रिलीजन' से इतने प्रभावित हुए कि पहली पुस्तक का अनुवाद और दूसरी पुस्तक का सारांश गुजराती में प्रस्तुत किया। दक्षिण अफ्रीका पहुँचने पर हेनरी थोरो की 'ऑन द ड्यूटी ऑफ सिविल डिसओबिडिएंस', टॉल्स्टॉय की पुस्तक 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू', 'गोस्पेल इन ब्रीफ', 'ह्वाट टु डू' और रस्किन की 'अन्टु दिस लास्ट' ने गांधी जी को बड़ा प्रभावित किया था। टॉल्स्टॉय के इस विचार से कि हर आदमी को अपने दैनिक भोजन के लिए शारीरिक श्रम करना चाहिए, वे इतने प्रभावित हुए कि

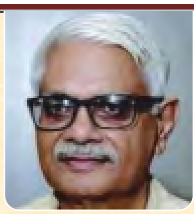

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

जन्म : 21 अप्रैल, 1951

शिक्षाविद, मनोविज्ञानी, समाज विज्ञानी, लेखक, संपादक प्रो. गिरीश्वर मिश्र दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और मनोविज्ञान विभाग के पूर्व प्रमुख तथा कला संकाय के पूर्व डीन के रूप में कार्यरत रहे हैं। चार दशकों के अपने अकादमिक करिअर के दौरान आपने गोरखपुर, इलाहाबाद, भोपाल और दिल्ली विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्य किया है।

प्रकाशन : मनोविज्ञान के अलावा विभिन्न विषयों पर 25 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : डॉक्टर हरिसिंह गौर पुरस्कार (मध्य प्रदेश शासन), राधाकृष्ण पुरस्कार (मध्य प्रदेश उच्च शिक्षा आयोग), गोविंद वल्लभ पंत पुरस्कार (केंद्रीय गृह मंत्रालय)।

संपर्क : मोबाइल– 9922399666
ई-मेल– misragirishwar@gmail.com

दक्षिण अफ्रीका में टॉल्स्टॉय फॉर्म स्थापित किया। ऐसे ही रस्किन को पढ़कर उन्होंने महसूस किया कि धन लोलुपता से दूर रहना चाहिए। इंग्लैंड में कानून की पढ़ाई के दौरान कुछ थियोसोफिस्ट मित्रों को पढ़ाने के लिए उन्होंने 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' का अध्ययन शुरू किया जो जीवन भर उनके साथ रहा। बाद में उसकी व्याख्या भी उन्होंने लिखी। उन्होंने सर एडविन अर्नाल्ड के द्वारा अनूदित 'बुद्ध चरित' को पढ़ा। बाइबिल विशेषतः 'न्यू टेस्टामेंट' ने भी उनको प्रभावित किया और 'त्याग ही धर्म है' यह बात मन में बैठ गई। कारकाइल की 'हीरोज' और 'हीरो वर्शिप' पुस्तक पढ़कर पैगंबर हजरत मुहम्मद की वीरता और तप के बारे में जाना।

नर्मदा शंकर का 'धर्म विचार', मैक्सम्यूलर की 'इंडिया ह्वाट कैन इट टीच अस, 'उपनिषद', 'राम चरित मानस', 'जरथुस्त्र के वचन', बेंथम की पुस्तक, साल्ट की पुस्तक 'अन्नाहार की हिमायत' आदि ने उनको बड़ा प्रभावित किया। वे 'ईशा वास्योपनिषद' पढ़कर बड़े आह्लादित हुए और महसूस करते हैं कि संसार में जो कुछ है, उसमें ईश्वर का निवास है, सब कुछ उसी का है। वहाँ से यह विचार आया कि हम तो केवल यहाँ पर रखवाले हो सकते हैं और फिर ट्रस्टीशिप का विचार स्थापित करते हैं। वह पुस्तकों की बातों को व्यवहार में लाते हैं। सर्वोदय का विचार भी ऐसे ही विकसित हुआ।

महात्मा गांधी की मौलिकता यह है कि वे विचारों को पचाते हैं और पचाकर समाज के मानस के अनुरूप ढालकर प्रस्तुत करते हैं। ऐसा करने के पहले वह विचार को स्वयं पर आजमाते हैं। बड़े परिश्रम और लगन से वह यह संधान करते हैं कि ईश्वर और सत्य का बड़ा निकट का रिश्ता है। पहले उनको लगता है कि ईश्वर सत्य है अर्थात स्वतंत्र सत्ता वाले ईश्वर का नाम सत्य है जो उसकी प्रमुख विशेषता है। परंतु निरंतर अनुभव के बाद गांधी जी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सत्य ही ईश्वर है और इस तरह वह सबको उपलब्ध है और सभी अपने-अपने ढंग से अस्तित्व के साथ जुड़ते हैं। वे विभिन्न धर्म ग्रंथों को पढ़कर उनका सार ग्रहण करते हैं। वे देखते हैं कि उनमें ऐसा क्या है जो मनुष्यमात्र के लिए क्या उपयोगी और कल्याणकारी है। वे एक सार्वभौमिक दृष्टि से विचार करते हैं, पर वे स्थानीय सरोकारों के प्रति भी समान रूप से संवेदनशील हैं। उनकी भाषा और संवाद का स्तर व संरचना वैश्विक और स्थानीय दोनों संदर्भों में सहजता से ग्राह्य होती है। वे शब्दों को नई अर्थ छटाओं से सनृद्ध करते चलते हैं। उदाहरण के लिए, वे कहते हैं कि 'अहिंसा' सिर्फ हिंसा न करना ही नहीं है। वह तो उसका शाब्दिक अर्थ है। इसका वास्तविक अर्थ प्रेम करना है, अहिंसा अर्थात प्रेम। गांधी जी सत्य और अहिंसा जैसे शब्दों को जीवन में व्यवहार के स्तर पर स्थापित करते हैं। वे इस बात के कायल हैं कि शब्द की अर्थवत्ता आचरण में उनको उतारकर स्थापित करने से आती है। इसी प्रकार 'अपरिग्रह' (जरूरत भर की चीजों को रखना) और ब्रह्मचर्य को भी वह जीवन में उतारते हैं। वे 'महात्मा' इसीलिए हैं कि उनके मन में उठने वाले संकल्प, वचन अर्थात बोलने में और व्यवहार के बीच कोई भेद नहीं रहता था। तभी वह यह कह सके कि 'मेरा जीवन एक खुली किताब है' और उसे कोई भी पढ़ सकता है। उनका जीवन ही उनका संदेश है। ऐसी पारदर्शिता एक आध्यात्मिक व्यक्ति ही कर सकता है। एक पहुँचा हुआ व्यक्ति ही ऐसा कह सकता है जिसके पास कुछ छिपाने के लिए न हो। तभी गांधी जी जहाँ अंग्रेजी शासन और उसके दोषों के प्रति जितने आग्रहपूर्वक विरोध में खड़े होते थे उतनी ही संवेदनशीलता अंग्रेज मनुष्य के प्रति भी रखते थे। यह उनके संवेदनशील नेतृत्व का ही कमाल था कि 1930 में जब संचार की सीमित सुविधाएँ थीं, गांधी जी ने दांडी मार्च का नेतृत्व किया था जो पूरी तरह शांतिपूर्ण था और किसी भी तरह का उपद्रव नहीं हुआ था।

इसके पहले दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने आठ वर्ष लंबा पहला सत्याग्रह किया था। इस सामाजिक प्रयोग के खट्टे-मीठे सफलता और विफलता के अनुभवों के बीच गांधी जी में बड़े परिवर्तन आए। इसके परिणामस्वरूप एक लगभग असामाजिक-सा लगने वाला भीरू व्यक्ति जब भारत लौटा तो वह आत्मविश्वास से भरा और अनुभव की खराद पर चढ़कर निखरा हुआ था। उस व्यक्ति ने गाँव-गाँव तक फैली अनपढ़ जनता तक 'स्वराज' की बात पहुँचाई और जीने की राह दिखाई। यह करते हुए गांधी जी के सामने पूरे भारत का बिंब था। उसमें कोई भी छूटा नहीं था, न हिंदू, न मुस्लिम, न गाँव का, न शहर का, न गरीब, न धनी कोई भी उनकी सोच के दायरे से बाहर न था। सबको जोड़कर कैसे शामिल किया जाए यही उनकी सबसे बड़ी चिंता थी। उन्होंने ऐसी अर्थव्यवस्था की संकल्पना की जिसमें हर हाथ को काम मिल सके और गरीब से गरीब को भी जीने का आश्रय रहे। हमारे जीवन में जितनी आवश्यकता होती है, उससे ज्यादा हम संग्रह करते हैं। इसका परिणाम साधनों की उपलब्धता में गहरी विसंगति और असमानता के रूप में दिखता है जिसके कारण सामाजिक असंतुलन पैदा होता है। इसे ध्यान में रखकर गांधी जी अपरिग्रह में समता और समानता स्थापित करने की युक्ति ढूँढ़ रहे थे। इसी तरह वह ऐसी शिक्षा के हिमायती थे जिसमें आत्मा, बुद्धि, हृदय और शरीर सबके विकास और परिष्कार का अवसर मिल सके। शिक्षा एकांगी न होकर सर्वसमावेशी होनी चाहिए।

यह सब करते हुए भारत की सभ्यता और संस्कृति उनके हृदय में सदैव विद्यमान थी। वह अपने को उसी की जमीन पर दृढ़ता से खड़े पाते हैं। वह उसे किसी शर्त पर छोड़ने को तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं कि घर की खिड़कियाँ खुली रहेंगी तो उनसे विचारों की आवाजाही हो सकती है। वे वेद के प्रसिद्ध मंत्र 'आनो भद्राः क्रतवो यान्तु विश्चतः' के विचार की याद दिलाते हैं। यहाँ भिन्न-भिन्न विचारों का स्वागत रहा है, पर ये विचार हमें ही जड़ से उखाड़ दें, यह गवारा नहीं होगा। हम बाह्य विचारों को अपनी शर्तों पर ग्रहण करेंगे

न कि अंधे की तरह उनके प्रति आत्मसमर्पण करेंगे। गांधी जी भारत के साथ इस तरह एकाकार हुए कि वे भारत के पर्याय बन गए। उनसे जुड़ी हर वस्तु– तीन बंदर, लाठी, गोल ऐनक और चरखा–सभी उनके और भारत के प्रतीक बन गए। आज भारत के बाहर किसी दूसरे देश में जाने पर भारतीय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह गांधी के बारे में अवश्य जानता होगा, भारत अर्थात गांधी और गांधी अर्थात भारत। पर उनमें सारी मानवता का स्वर भी गुंजित होता दिखता है। इसलिए उनके विचार पूरी दुनिया के लिए महत्वपूर्ण हैं। पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन और हिंसा जैसे आज के समकालीन विकराल सवालों के बारे में सोचते हुए गांधी बड़े प्रासंगिक हो जाते हैं। उनकी यह बात कि हिंसा का समाधान हिंसा नहीं, प्रेम है, हमारे लिए संभावनाओं का द्वार खोलती है।

महात्मा गांधी एक बेहतरीन लेखक हैं। आमतौर पर सार्वजनिक जीवन में व्यस्त लोगों को अपने अनुभवों को लिख पाना संभव नहीं हो पाता, परंतु गांधी जी इसके अपवाद हैं। वे अपने समय के समाज के हर एक पक्ष पर अपना मंतव्य जाहिर करते हैं और उसे शब्दबद्ध कर लिखते हैं। लेखन उनके सामान्य जीवन कर्म का हिस्सा बन गया था और जीवन भर चलते रहने वाले अपने प्रयोगों को साझा करने के लिए वह उनको अंकित करते रहे। जैसा कि हम सब जानते हैं कि गांधी जी एक बड़े प्रतिभा संपन्न पत्रकार भी थे। यह कार्य उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में शुरू किया था जहाँ उन्होंने जीवन के 21 वर्ष बिताए थे। गांधी जी द्वारा संपादित पत्र-पत्रिकाओं में 'यंग इंडिया', 'इंडियन ओपिनियन', 'हरिजन' और 'नव जीवन' प्रमुख हैं। उन्होंने सात छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखीं जो मूलतः गुजराती में थीं, ये हैं–हिंद स्वराज, दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का इतिहास, आत्मकथा, रचनात्मक कार्यक्रम, भगवद्गीता पर टीका, मंगल प्रभात और आरोग्य की कुंजी। इन सबका प्रकाशन नव जीवन प्रेस, अहमदाबाद से हुआ था। ये गुजराती, हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं में उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त लेख, साक्षात्कार, पत्र, भाषण आदि प्रचुर मात्रा में हैं। वे समाज के हर विषय को अपनी लेखनी का विषय बनाते हैं। इसका प्रमाण 100 खंडों में प्रकाशित उनका लेखन है। एक लेखक के तौर पर उनकी मूल रचना चाहे कम रही हो, लेकिन उनका व्यापक लेखन इस बात को स्पष्ट करता है कि जीवन के विभिन्न आयामों को उन्होंने स्पष्ट किया और जनमानस को उद्वेलित करने का प्रयास किया। वह संचार और संवाद को व्यवस्थित करने के लिए लिखित रूप को अधिक महत्व देते थे। उनके व्यक्तित्व और लिखने का ही प्रभाव कहा जा सकता है कि तत्कालीन समय के अनेक साहित्यकारों, शिक्षा शास्त्रियों, मानव शास्त्रियों, संस्कृति कर्मियों, राजनीतिक विज्ञानियों और अर्थशास्त्रियों से उनका सीधा संवाद रहा। विश्व शांति से लेकर व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी समस्याओं पर उन्होंने अपना पक्ष रखा और जनता से सीधा संवाद बनाए रखा। गांधी को तत्कालीन समय में नैतिकता के एक मापदंड के तौर पर देखते थे और किसी भी समस्या या नैतिक प्रश्न के समय उनसे परामर्श लिया करते थे। यह गांधी की नैतिक जीत ही कही जा सकती है कि अपने समय में उन्होंने नैतिकता की नई परिभाषा तय की और अपने लेखन के जरिए समाज में नैतिकता के नए मापदंड स्थापित किए। नैतिकता का यह दायरा केवल व्यक्तिगत जीवन ही नहीं, अपितु सामाजिक जीवन के हर आयाम में स्थापित किया। यह स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है कि चाहे हिंदी साहित्य हो या राजनीति विज्ञान, सभी में एक गांधी युग की अवधारणा स्पष्ट तौर पर स्वीकारी जाती है। अपने व्यापक लेखन के जरिए उन्होंने केवल भारत ही नहीं, अपितु विश्व के विभिन्न विचारकों और दार्शनिकों से भी सीधा संपर्क स्थापित किया। अल्बर्ट आइंस्टीन, रोमा रोला, टॉलस्टॉय इत्यादि ऐसे नाम हैं जिन्हें इस उदाहरण के लिए याद किया जा सकता है। गांधी लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह कही जा सकती है कि सैद्धांतिक लेखन के साथ-साथ उसमें अनुभव के प्रामाणिकता का भी समावेश रहता है। यह लेखन विश्वसनीयता की हर कसौटी पर खरा उतरता है। तत्कालीन समस्याओं को व्याख्यायित करने तक ही वह अपनी दृष्टि सीमित नहीं रखते हैं, बल्कि समस्या के मूल में जाकर उसके समाधान का रास्ता भी तलाशते हैं। इसके उदाहरण के रूप में असहयोग आंदोलन हमारे सामने है। एक लेखक के रूप में उनका दायरा व्यापक है और वह हिंसा से मानवीय सभ्यता को बचाने के लक्ष्य के प्रति समर्पित हैं। आज के दौर में देखा जाए तो उनका लेखन मनुष्य, समाज और प्रकृति इन तीनों ही आयामों को समझते हुए आवाज उठाता है।

आज के दौर में जब विकल्प खोजने की बात उठती है तो गांधी ही उभरकर सामने आते हैं। उनका व्यापक दृष्टिकोण सचमुच 'वसुधैव कुटुंबकम्' की अवधारणा को आगे ले जाता है। जिस सजगता और अपार धैर्य के साथ उन्होंने भारत की और मनुष्यता की लड़ाई लड़ी उसके मूल में मनुष्य की और मानुष भाव की श्रेष्ठता 'न मानुषात परतरं किंचिदस्ति' का भाव ही मौजूद दिखता है। महात्मा गांधी की 150वीं जयंती का अवसर देश और समाज के लिए आत्ममंथन का अवसर है। उन्होंने सबको साथ लेकर एक स्वतंत्र, स्वावलंबी और नैतिक समाज वाले भारत का स्वप्न देखा था जिसमें अहिंसा, साधनों की शुचिता, विकेंद्रित शासन और प्रकृति के साथ सहज संबंध अभीष्ट था। भौतिकता और तकनीकी विकास को प्रमुखता देने वाली आधुनिकता की अमानवीयता को लेकर गांधी जी की चिंताएँ आज सत्य सिद्ध हो रही हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ही सब कुछ का समाधान नहीं कर सकती। आज विकास के जिस पड़ाव पर हम पहुँच रहे हैं वह बाजार, भौतिकता और हिंसा की चुनौतियों से जूझ रहा है। आशंका और अविश्वास वाले अंधे युग में गांधी जी और भी प्रासंगिक होते जा रहे हैं। उनके आइने पर खुद को देखने की आवश्यकता है तभी मानवता का भविष्य सुरक्षित हो सकेगा।

स्वामी विवेकानंद : दलितोत्थान के प्रथम मसीहा

हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रिकाओं में दलित-चेतना एवं दलितोत्थान की बड़ी चर्चा है और गांधी नहीं डॉ. आंबेडकर उसके केंद्र में हैं। डॉ. आंबेडकर ने अपने अनुयायियों के साथ 'मनुस्मृति' को जलाया था और कुछ समय पहले 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' ने प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास 'रंगभूमि' को दलित अपमान के कारण जलाया था। आंबेडकर के बाद कबीर दलित धर्म के प्रणेता-प्रवर्तक माने गए और दलित संत कवियों में दलितता के तत्वों की खोज शुरू हुई और आंबेडकर के साथ ज्योतिबा फुले, नारायण गुरु, पेरियार रामास्वामी नायकर, स्वामी अछूतानंद, चाँद गुरु, गुरु घासीदास आदि दलित चेतना के विस्तारक माने जाने लगे। इस सारे विवेचन में स्वामी विवेकानंद और गांधी गायब थे और यदि थे तो आंबेडकर ने गांधी को 'पतित व्यक्ति' और गांधी-युग को 'अंधकार युग' कहा और उन्हें दलित-विमर्श में कोई स्थान नहीं मिला। स्वामी दयानंद की कर्मगत जाति-व्यवस्था तथा समानता के दृष्टिकोण की थोड़ी चर्चा तो हुई, परंतु स्वामी विवेकानंद तो इस डिस्कोर्स में पूर्णतः गायब हैं, जबकि वे ब्राह्मण-पुरोहितवाद तथा अस्पृश्यता के विरुद्ध सबसे कठोर आवाज उठाने वाले सबसे पहले आधुनिक धर्मोपदेशक थे। स्वामी विवेकानंद 19वीं-20वीं शताब्दी के दलित चेतना के सबसे प्रबल उद्भावक थे और उन्होंने देश की दलित-नीति एवं दलित-दर्शन की आधार-शिला रख दी। स्वामी विवेकानंद धर्म, अध्यात्म, पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान और सभ्यता के समान ही दलित समाज को भी पाखंडी पुरातनता से मुक्त कर एक नया आधुनिक रूप देना चाहते थे। वे उस कालखंड के सबसे बड़े दलित-उद्धारक और दलितों के मसीहा थे।

डॉ. कमलकिशोर गोयनका

दिल्ली के जाकिर हुसैन कॉलेज से अवकाशप्राप्त डॉ. गोयनका प्रेमचंद साहित्य के आधिकारिक विद्वान एवं प्रामाणिक शोधकर्ता माने जाते हैं। साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित 'प्रेमचंद ग्रंथावली' के संकलन एवं संपादन में उनका विशेष योगदान है।

प्रकाशन : प्रेमचंद पर 27 पुस्तकें तथा अन्य लेखकों पर 21 पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता का 'नथमल भुवालका पुरस्कार' से सम्मानित; हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा दो बार सम्मानित; उत्तर-प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ का 'साहित्य भूषण' पुरस्कार; केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा का पं. राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार; भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार (भारत सरकार); 2014 का व्यास सम्मान।

संपर्क : ई-मेल– kkgoyanka@gmail.com

स्वामी विवेकानंद के जीवन में ऐसी कुछ घटनाओं की जानकारी मिलती है जो उन्हें जाति-भेद को तोड़ने और समानता का संस्कार देती हैं। विवेकानंद छह-सात वर्ष के थे तब उन्होंने भिन्न-भिन्न जातियों के हुक्कों में मुँह लगाकर कश खींचा था तो पिता के इसका कारण पूछने पर कहा था कि 'देख रहा था कि जाति नहीं मानने पर क्या होता है?' एक बार उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस ने नरेंद्र (विवेकानंद) के जूठे तंबाकू को पीकर

अस्पृश्यता के पाखंड का पर्दाफाश किया था और अभेद की शिक्षा दी थी। हिमालय भ्रमण के समय एक मुसलमान ने खीरा खिलाकर उनकी प्राण-रक्षा की थी और जब वे आबू में एक मुसलमान के यहाँ रह रहे थे तो उन्होंने खेतड़ी नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी से कहा था कि

" स्वामी विवेकानंद हिंदू संन्यासी थे और वे हिंदू धर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते थे और आध्यात्मिकता उसका केंद्र था। वे वर्ण और जाति के दोषों के लिए धर्म को उत्तरदायी नहीं मानते थे और वर्णाश्रम व्यवस्था को सामाजिक नियम तथा उसका आधार गुण-कर्म भेद को मानते थे। वे कहते हैं कि यह ईश्वर प्रदत्त महान सामाजिक संस्था है, लेकिन विदेशी आक्रमणों एवं घोर अज्ञानी तथा पाखंडी, अभिमानी ब्राह्मणों के कारण उसमें अनेक दोष तथा बाधाएँ आती गईं। वर्णाश्रम व्यवस्था से एक जाति के सभी सदस्य संगठित रहते हैं, और वंशानुगत होने से संघर्ष नहीं होता, परंतु इससे प्रतियोगिता नष्ट हो जाती है और जिसके कारण राजनीतिक अवनति हुई और विदेशी जातियों से पराभूत होना पड़ा। इसी कारण स्वामी विवेकानंद मानते हैं कि हिंदू धर्म के समान मानवता की उच्चता वाला कोई धर्म नहीं और गरीबों-नीची जाति वालों का इतनी क्रूरता से गला घोंटने वाला भी दूसरा धर्म नहीं। "

मैं संन्यासी हूँ और आप लागों के सभी सामाजिक विधि-निषेधों से परे हूँ। मैं भंगी के साथ भी भोजन कर सकता हूँ। इसे भगवान और शास्त्र ने अनुमोदित किया है। मेरी दृष्टि में ऊँच-नींच नहीं है। उसी प्रकार उन्होंने खेतड़ी राज्य के एक रेलवे स्टेशन पर एक दीन-हीन दलित के हाथ का बना भोजन किया। विवेकानंद की आँखों में आँसू थे, क्योंकि तीन दिन तक किसी ने भोजन के लिए नहीं पूछा था। उन्होंने इंद्र द्वारा स्वर्ण पात्र में अमृत देने से भी अधिक तृप्ति का अनुभव किया। इसके बाद वे खंडवा में एक मेहतर के घर रहे और इस दलित समाज की श्रेष्ठता एवं मनुष्यता से आश्चर्यचकित रह गए और उन्होंने इस दलित समाज के उत्थान का संकल्प किया।

स्वामी विवेकानंद हिंदू संन्यासी थे और वे हिंदू धर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते थे और आध्यात्मिकता उसका केंद्र था। वे वर्ण और जाति के दोषों के लिए धर्म को उत्तरदायी नहीं मानते थे और वर्णाश्रम व्यवस्था को सामाजिक नियम तथा उसका आधार गुण-कर्म भेद को मानते थे। वे कहते हैं कि यह ईश्वर प्रदत्त महान सामाजिक संस्था है, लेकिन विदेशी आक्रमणों एवं घोर अज्ञानी तथा पाखंडी, अभिमानी ब्राह्मणों के कारण उसमें अनेक दोष तथा बाधाएँ आती गईं। वर्णाश्रम व्यवस्था से एक जाति के सभी सदस्य संगठित रहते हैं, और वंशानुगत होने से संघर्ष नहीं होता, परंतु इससे प्रतियोगिता नष्ट हो जाती है और जिसके कारण राजनीतिक अवनति हुई और विदेशी जातियों से पराभूत होना पड़ा। इसी कारण स्वामी विवेकानंद मानते हैं कि हिंदू धर्म के समान मानवता की उच्चता वाला कोई धर्म नहीं और गरीबों-नीची जाति वालों का इतनी क्रूरता से गला घोंटने वाला भी दूसरा धर्म नहीं। स्वामी विवेकानंद ब्राह्मण, ब्राह्मणत्व, पुरोहित तथा पुरोहिती पर नए दृष्टि से विचार करते हैं। वे मानते हैं कि आरंभ में सब ब्राह्मण थे और गुणों से परिपूर्ण थे। ये ब्राह्मण ईश्वर के अंतरंग स्वरूप हैं और 'मनुष्यत्व के चरम आदर्श' हैं। इन ब्राह्मणों को अपने सद्गुणों—ज्ञान, नीति, सदाचार, उदारता, प्रेम, धार्मिकता, सज्जनता आदि, संसार को बाँटने चाहिए। ब्राह्मणों ने जीवन सत्य और धर्म को पहले जाना, लेकिन संचित ज्ञान और संस्कार पर एकाधिकार करके अन्य जातियों को वंचित कर दिया। यह अवसर, अग्रसरता और सुविधाओं का आसुरी दृष्टि से किया गया दुरुपयोग था। इस एकाधिकार ने दूसरी जातियों में नीचता का भाव उत्पन्न कर दिया। विवेकानंद इस एकाधिकार को समूल नष्ट करने के साथ ब्राह्मणों से कहते हैं कि धर्म सभी को उपलब्ध कराओ और चांडाल तक को जाज्वल्यमान मंत्रों का उपदेश करो तथा अग्नि-मंत्र में दीक्षित करो, अन्यथा तुम ब्राह्मणों को धिक्कार है, तुम्हारी शिक्षा एवं संस्कृति को धिक्कार है।

स्वामी विवेकानंद मानते हैं कि ब्राह्मणों ने अपनी महान बौद्धिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति से इस प्रभुत्व तथा एकाधिकार की शक्ति प्राप्त की, लेकिन वह 'अधिकार लिप्सा' तथा 'व्याघ्रवत तृष्णा' की केंद्र बन गई। वे वेदांत में किसी विशेषाधिकार को अस्वीकार करते हैं। वेदांत के अनुसार जन्मगत ऊँच-नीच के भेद का कोई अर्थ नहीं है। वे इस भेदभाव को सभी दोषों का मूल कारण मानते हैं। सब में एक ही तत्व के होने से एकत्व तो होता है, सबका हित भी होता है। वे कहते हैं कि प्रकृति में विभिन्नता है, यह सत्य है, लेकिन इस विभिन्नता में ही एकता का अनुभव होगा। यह भी सच है कि जीवन में कभी समानता नहीं आ सकती, किंतु एक विशेष जाति को विशेषाधिकारों से दूर किया जा सकता है। विशेषाधिकार दूसरों को दबाकर मिलता है, अतः उसे नष्ट करना नैतिकता का उद्देश्य है। इस प्रकार विभिन्नता के नाश के बिना समानता एवं एकता की रक्षा हो सकती है और इस विशेषाधिकार की कब्र खुद ब्राह्मणों को खोदनी चाहिए।

स्वामी विवेकानंद हिंदू धर्म की अस्पृश्यता एवं छुआछूत के भयंकर रोग पर गहरी चोट करते हैं। अस्पृश्यता सनातनी हिंदू समाज का एक 'अंधविश्वास' तथा 'कुसंस्कार' है, जो किसी ग्रंथ में नहीं है। वे कहते हैं, "ये हजारों ब्राह्मण भारतवर्ष के नीच, पददलित जनसाधारण के लिए क्या कर रहे हैं? उनके होठों पर केवल 'छूओ मत' वाक्य खेल रहा है। हमारा सनातन धर्म उनके हाथों कितना नीच और पतित बन गया है। हमारा धर्म अब कहाँ है? केवल 'मत

छुओवाद' में, अन्यत्र कहीं 'नहीं'।" जो धर्म दूसरों के केवल श्वास एवं स्पर्श से ही अपवित्र हो जाए, वह दूसरों को कैसे पवित्र करेगा? स्वामी जी ऐसे छुआछूत पंथियों पर झाड़ू मारने तक के लिए कहते हैं, क्योंकि वे अपनी दिव्य-दृष्टि से देखते हैं कि सबके भीतर एक ही ब्रह्म, एक ही शक्ति विद्यमान है, केवल विकास की न्यूनाधिकता है। ये मोची, मेहतर, मूर्ख, निर्धन, अपढ़, निम्न जाति के सभी तुम्हारे भाई हैं, लेकिन तुम्हारे छुआछूत ने सारे देश को नीचता, कायरता तथा अज्ञान के गहरे गर्त में डूबो रखा है। स्वामी विवेकानंद इस कारण 'पुरोहित' और 'पुरोहिती' की तीव्र भर्त्सना करते हैं। वे पुरोहित को 'पाखंडी', 'कलियुगी राक्षस', 'छली', 'निर्दयी और हृदयहीन' तथा 'अधिकार लिप्सू' कहते हैं। पुरोहित अपने ज्ञान, अध्यात्म, विद्या, त्याग, वैराग्य, प्रेम आदि से देवताओं से संपर्क स्थापित करता था तथा सार्वजनिक हित एवं कल्याण करता था, लेकिन वह प्रभुत्व, विशेषाधिकार, अज्ञान, अकर्मण्यता, छल-पाखंड के कारण अपने ही जाल में फँस गया है। यह पुरोहिती छल भारत के लिए अभिशाप है। इस छल को उखाड़ फेंको तो इससे संसार का सर्वोत्तम धर्म प्राप्त हो जाएगा। अतः वे पुरोहिती को जड़ से उखाड़ फेंकने का आह्वान करते हैं।

स्वामी विवेकानंद भारत की जनता को दो भागों में बाँटते हैं—एक अभिजात्य एवं कुलीन वर्ग और दूसरा किसान-श्रमिक, मेहतर-मोची आदि का निम्न वर्ग। वे मानते हैं कि कुलीन वर्ग के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी निम्न वर्ग के प्रति घोर अपराधी हैं और वे 'मृत शरीर' तथा 'सचल श्मशान' के समान हैं। स्वामी जी इस वर्ग की कटु आलोचना करते हैं। वे सजीव नहीं हैं और आर्य संतान होने का अहंकार एवं प्राचीन भारत के गौरव पर अभिमान निरर्थक और निष्प्राण है। ये उच्च वर्ग निम्न जाति के लोगों की मनुष्यता खत्म करने के अपराधी हैं, अतः इन्हें खुद ही अपनी चिता तैयार करनी चाहिए क्योंकि उच्च वर्ग के नाश के बिना नवभारत की रचना नहीं हो सकती। नए भारत का उदय तो किसान, मछुआ, मोची, मेहतर, श्रमिक, छोटे व्यापारी आदि के हाथों से ही होगा। देश के साधारण लोगों में 'रक्तबीज' की अक्षय जीवन-शक्ति यही है। अब नवभारत अमराइयों, जंगलों, पहाड़ों और पर्वतों से प्रकट होगा और इनमें ऐसा सिंह बल होगा कि वह नव्य भारत की रचना कर देगा।

स्वामी विवेकानंद को विश्वास था कि शूद्र का देश में राज होगा। उन्हें कोई रोक नहीं सकता। पुरोहित, योद्धा तथा व्यापारी शासन कर चुके, अब शूद्रों का समय है। वे कहते हैं—"दरिद्र तो 'नारायण' हैं, निर्धन-निरक्षर-मूर्ख-दुखी ईश्वर के रूप हैं तथा झोंपड़ियों में ही राष्ट्र बसता है। ये ही उत्तराधिकारी हैं और यही भावी भारतवर्ष है। वे देश के मेरुदंड हैं। उनके सुधार का रत्ती-भर भी प्रयास नहीं हुआ। यह कोई देश है या नरक? यह धर्म है या शैतान का नग्न नृत्य? उच्च वर्ग का कर्तव्य है कि निम्न जाति के लोगों को ब्राह्मण बनाएँ, नीचे से ऊपर लाएँ, उन्हें जाग्रत करें, शिक्षा दें तथा पुरोहिती एवं धर्मांतरण से रक्षा करें। हमें केवल मनुष्य भर चाहिए, शेष सब कुछ अपने आप हो जाएगा। ये लोग 'जाग्रत देवता' थे और इन्हें ब्राह्मण की अपेक्षा शिक्षा की अधिक आवश्यकता है। स्वामी विवेकानंद सावधान करते हैं कि शूद्र जाति के योग्य विद्वानों को उच्च वर्ग वशिष्ठ, नारद, सत्काम, जाबाल, व्यास, कृप, द्रोण, कर्ण आदि को ब्राह्मण या क्षत्रिय का उच्च पद देकर अपने में मिला लेता है और इससे वेश्या, दासी, ढीमर, सूत जाति को कोई लाभ नहीं होता। अतः वे चाहते हैं कि शूद्र जाति की संपत्ति, शिक्षा या बुद्धि का लाभ उसी समाज की भलाई के लिए होना चाहिए।

इस प्रकार स्वामी विवेकानंद का यह दलित-चिंतन आधुनिक भारत का महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जो भावी दलित-विमर्श की आधार-शिला रख देता है और गांधी एवं प्रेमचंद को दलितोत्थान के मूलभूत बिंदु उपलब्ध कराता है। स्वामी जी धर्माचार्य, धर्म प्रचारक थे, पर आधुनिक भारत का एक बिंब उनके पास था। वे वर्ण-व्यवस्था के समर्थक थे, पर वेदांत के अनुयायी होने के कारण असमानता एवं विशेषाधिकार के विरोधी थे। उन्होंने भ्रष्ट-पाखंडी ब्राह्मणत्व को चुनौती दी और सभी को ब्राह्मण बनाने का क्रांतिकारी विचार दिया। उन्होंने देश की साधारण जनता में मानवता एवं नारायणत्व की विराटता देखी और शूद्रों का राज आने की भविष्यवाणी की। भारत का वह योद्धा संन्यासी नवभारत के निर्माण की गीता लिख रहा था, लेकिन बाद में गांधी हृदय-परिवर्तन तथा आंबेडकर जाति व्यवस्था को समूलतः नष्ट करने का दर्शन दे रहे थे। स्वामी विवेकानंद उच्च वर्ग से निम्न वर्ग को जाग्रत करने के लिए बार-बार कहते हैं, लेकिन वे अवश्य जाग्रत होंगे और वे तुम्हारे अत्याचारों के कारण तुम्हें फूँक से ही उड़ा देंगे। अतः इन्हें ज्ञान-दान, विद्या-दान दो, इन्हें जाग्रत करो तो तुम्हारे प्रति कृतज्ञ रहेंगे। इस प्रकार स्वामी विवेकानंद ने नए भारत की दलित चेतना की बुनियाद रख दी और वे आधुनिक दलित-विमर्श के प्रथम मसीहा बन गए।

अंग्रेजी राज के प्रथम विद्रोही राजा नारायण सिंह

आम ऐतिहासिक धारणा यही है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का आरंभ वर्ष 1857 में मेरठ की बैरकपुर छावनी (उत्तर प्रदेश) में मंगल पांडेय की अगुवाई में हुए सिपाही विद्रोह से हुआ, जिसका सशस्त्र संगठित विस्तार बिहार के जमींदार कुँवर सिंह और उनके भाई अमर सिंह ने किया। मगर इतिहास के तल से निकलकर अनावृत हुए नए तथ्य यह बता रहे हैं कि 1757 में ईस्ट इंडिया कंपनी की अंग्रेजी फौज के बंगाल के नवाब को हराकर फिरंगी राज की नींव डालने और युद्ध जीतते हुए 1765 में बंगाल प्रांत (पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा और बांग्लादेश) की दीवानी मुगल बादशाह से हासिल कर लेने के बाद तुरंत ही फिरंगी राज के विरुद्ध विद्रोह के स्वर उठने लगे थे। सबसे पहले सिरिस-कुटुम्बा रियासत के राजा नारायण सिंह ने बगावत की आवाज बुलंद की थी और उन्होंने सशस्त्र संघर्ष का एलान करते हुए सोन नदी में अंग्रेजी फौज को जल समाधि दे दी थी।

सिरिस-कुटुम्बा रियासत बिहार में अविभाजित भारत की 622 रियासतों में एक थी, जिसकी अपनी सरकार, सेना, खजाना, जमीन और रियाया (आबादी) थी। इस रियासत के राजा नारायण सिंह ने आजीवन अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार नहीं की और वह महाराणा प्रताप की तरह जंगल में रहकर अंग्रेजी फौज के साथ गुरिल्ला युद्ध लड़ते रहे। उन्हें फिरंगी राज को कर देना मंजूर नहीं था। देशी रियासतों के अपने-अपने इलाके में बँटे होने, सियासत से जनता के अलग-थलग रहने और राष्ट्रीयता के अभाव में राजा नारायण सिंह का विद्रोह उनके जीवनकाल में परवान नहीं चढ़ सका। फिर भी उनकी बगावत का ऐतिहासिक महत्व यह है कि उनका ही संघर्ष आगे विस्तार पाकर 1857 का राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का प्रेरणा-स्रोत बना। राजा के विद्रोह के पीछे भले ही व्यापक राजनीतिक दृष्टि और भविष्य की कोई स्पष्ट तस्वीर नहीं थी, मगर शोषक विदेशी हुकूमत के प्रति कूट-कूटकर भरी घृणा के गर्भ से ही स्वतंत्रता के संगठित संघर्ष का जन्म हुआ। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. कालीकिंकर दत्त ने अपनी पुस्तक (कुँवर सिंह, अमर सिंह) में कई सालों का अनुभव रखने वाले एक अंग्रेज सैन्य अफसर के पत्र के हवाले से बताया है कि बनारस (उत्तर प्रदेश) के महाराजा चेत सिंह का विद्रोह पड़ोसी प्रांत (बिहार) के विद्रोह की प्रतिक्रिया थी।

बिहार के पटना, गया, औरंगाबाद, रोहतास जिलों में मौजूद दस्तावेज प्रमाण है

कृष्ण किसलय

संप्रति : प्रतिष्ठित लघु आंचलिक समाचार-विचार पाक्षिक सोनमाटी और ग्लोबल न्यूज-व्यूज वेबपोर्टल सोनमाटीडाटकाम का संपादन-प्रकाशन-प्रसारण। सोनघाटी पुरातत्व परिषद, बिहार के सचिव के रूप में अनेक पुरातात्विक स्थलों-व्यक्तित्वों की खोज और भारत के विश्वविश्रुत सोन नद अंचल के स्थानीय इतिहास पर आधिकारिक कार्य।

प्रकाशन : सैकड़ों रिपोर्ट, लेख प्रकाशित। दूरदर्शन-आकाशवाणी से भी रचनाओं का प्रसारण। विज्ञान के इतिहास के संदर्भों के साथ ब्रह्मांड और जीवन पर प्रमाणित पुस्तक 'सुनो मैं समय हूँ', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित।

सम्मान : इंडियन साइंस राइटर्स एसोसिएशन (इस्वा) द्वारा प्रोफेशनल साइंस जर्नलिज्म अवार्ड तथा अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं से सम्मानित।

संपर्क : फोन– 9708778136, 9523154607

कि खून के आपसी रिश्तों में जुड़े सिरिस-कुटुम्बा, माली, शेरघाटी, जगदीशपुर, बनारस आदि रियासतों के जमींदारों द्वारा अंग्रेजी राज के बहिष्कार-विरोध की निरंतर दुर्घर्ष प्रवृत्ति ही सन् 1857 के उत्कट विद्रोह के रूप में विकसित-परिणत हुई और बिहार में जगदीशपुर के जमींदार बाबू कुँवर सिंह के नेतृत्व में विद्रोह खड़ा हुआ। राजा नारायण सिंह की पत्नी गुलाब कुँवर भोजपुर जिला की थीं और कुँवर सिंह के पुरखों के परिवार से थीं। शेरघाटी के उप समाहर्ता एच. डेविड की अनुशंसा पर पटना के आयुक्त स्टार्टन ने कुँवर सिंह को सहयोग देने के आरोप में 11 मालदारों (भूस्वामियों)—भानुप्रताप सिंह, दर्शन सिंह (माली), बालगोविन्द सिंह (बरहड़ा), जग्गू सिंह (उरनाडिह), जगदम्बा सहेरी (मुनौरा), लालबहादुर सिंह (मुठानी), महाबल सिंह (मिर्जापुर), शेख चौकोरी (घोटा), पिताम्बर सिंह, अयोध्या सिंह (मुहौली), जगन्नाथ सिंह (सिमरा) की संपत्ति जब्त करने का आदेश दिया था। इनमें कई राजा नारायण सिंह के वंशधर थे।

राजा नारायण सिंह के छोटे भाई जयनाथ सिंह कवि थे, जिनकी कविताएँ उस समय की फारसी की पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। उन्होंने राजा नारायण सिंह की प्रतिष्ठा में दोहे लिखे थे—

इत अंछा, उत चिरकावाँ, सिरिस, कुटुम्बा, पंचवन, गोह।
अष्टविंशा ग्राम शत, राज करत नृप सोह।।
इत अंछा उत पलमुआ, इत चिरकावाँ उत रोहतास।
नारायण सो करण की, सबही भये हतास।।

पवईगढ़ रियासत में छह परगने गया जिले के चिरकावाँ, गोह, औरंगाबाद जिले के सिरिस, कुटुम्बा, अंछा और रोहतास जिले के सोन तट के पंचवन (डेहरी-आन-सोन, तिलौथू, अमझोर) क्षेत्र थे। 2800 गाँव वाले सिरिसा-कुटुम्बा रियासत का प्रशासनिक गढ़ (कचहरी) शाहपुर (औरंगाबाद के मौजूदा शाहपुर मुहल्ला में यादव कॉलेज के निकट) और आवासीय गढ़ शाहपुर से आठ किलोमीटर दूर बटाने नदी के किनारे पवई गाँव में था।

12 जून, 1757 को प्लासी (कोलकाता और मुर्शिदाबाद के बीच) के युद्ध में ईस्ट इंडिया कंपनी के गवर्नर राबर्ट क्लाइव ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को हराकर भारत में अंग्रेजी राज की नींव रखी थी। इसके बाद 23 अक्तूबर, 1764 को बिहार के बक्सर जिले के चौसा के मैदान में दिल्ली के मुगल बादशाह शाह आलम, अवध के नवाब, दिल्ली सल्तनत के वजीर शुजाउद्दौला, रामनगर (बनारस) के राजा चेत सिंह और बंगाल के नवाब मीर कासिम की सेना ने संयुक्त रूप से युद्ध किया था, जिसमें ईस्ट इंडिया कंपनी की फौज की जीत हुई थी। ईस्ट इंडिया कंपनी की तिजोरी का दिवाला फ्रांसीसियों, डचों, मराठाओं और फिर हैदर अली के साथ हुए युद्ध में निकल चुका था। कंपनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर ने 20 अक्तूबर, 1773 को बंगाल (बिहार, झारखंड, उड़ीसा सहित) का प्रथम गवर्नर जनरल सेनानायक वारेन हेस्टिंग्स को बनाया, जिसने लगान वसूलने की पंचवर्षीय व्यवस्था का सूत्रपात किया। वारेन हेस्टिंग्स ने रियासतों को नीलामी के जरिए ठेका पर देकर वार्षिक किराया (लगान वसूली) का तरीका अख्तियार किया।

उसी समय सिरिस-कुटुम्बा रियासत की गद्दी (पवईगढ़) पर किशोरवय राजा नारायण सिंह का राज्याभिषेक हुआ था। तरुणाई में राजा बने नारायण सिंह ने नीलामी की ऊँची बोली लगाकर अपनी जमींदारी बचाई थी। बंगाल में 1769-73 का वह दौर लगातार अकाल का था, जिसमें लाखों लोग भुखमरी के कारण मौत के मुँह में समा चुके थे। राजा ने कंपनी सरकार से मालगुजारी माफ करने और राहत कार्य कराने की अपील की। कंपनी सरकार के रेवेन्यू कलेक्टर ने ईस्ट इंडिया कंपनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर से अनुशंसा की कि सिरिस-कुटुम्बा रियासत की हालत मालगुजारी वसूल करने लायक नहीं है, घास के अलावा फसल नहीं हुई है। कलेक्टर के पास कंपनी सरकार का फरमान आया कि घास अच्छी चीज है, उसे बिकवाकर मालगुजारी वसूल कीजिए। तभी से राजा नारायण सिंह विद्रोही बन बैठे। सिरिस-कुटुम्बा पहली रियासत थी, जिसने अंग्रेजों के पैशाचिक लगान वसूली प्रक्रिया का मुखर विरोध किया और सशस्त्र संघर्ष भी। राजा के मन में अंग्रेजों के प्रति नफरत की बीज ऐसे पड़े कि उन्हें अंग्रेजों को फूटी कौड़ी नहीं देने की प्रतीज्ञा कर ली।

अगस्त 1781 में गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स रामनगर (बनारस, उत्तर प्रदेश) के महाराजा चेत सिंह से कर और जुर्माना वसूल करने कोलकाता से रवाना हुआ। उसने चतरा (झारखंड) स्थित फौजी छावनी के मेजर जेम्स क्राफोर्ड को पलटन लेकर बनारस पहुँचने का निर्देश दिया। जेम्स क्राफोर्ड ने अपनी पलटन के अग्रिम दस्ते को रवाना कर दिया और खुद फौज के हिरावल (लड़ाकू) दस्ते के साथ पीछे-पीछे चला। बनारस जाने वाली सड़क (आज ग्रैंड ट्रंक रोड) के बीच तीन किलोमीटर चौड़ी पाट वाली पानी से लबालब किसी सागर जैसी दिखने वाली सोन नदी को जंग के साजोसामान के साथ पार कराने के लिए नावों की व्यवस्था करने का आदेश मेजर क्राफोर्ड ने सिरिस-कुटुम्बा रियासत को भेजा। राजा ने गुप्त योजना बनाई और मल्लाहों द्वारा 05 मार्च, 1982 को अंग्रेजी पलटन के साजोसामान और सिपाहियों से भरी नावों को सोन की बीच पानी की धारा में डुबवा दिया। तब तक मेजर जेम्स क्राफोर्ड हिरावल दस्ते के साथ शेरघाटी (गया जिला) तक पहुँच चुका था। घटना की जानकारी

पाकर उसने रास्ता बदल दिया और रामनगर जाने के लिए बिहार के सीमांत कैमूर पहाड़ी पर स्थित रोहतास किला के निकट तलहटी में बसे अकबरपुर के निकट सोन नदी पार कर तिलौथू होकर बूढ़न पहाड़ी का रास्ता अपनाया।

राजा ने कैमूर पहाड़ की तलहटी में बौलिया जंगल और पंचवन (तिलौथू-अमझोर) में पनाह ली। कंपनी सरकार को राजा पर नजर रखने के लिए कहा गया। औरंगाबाद जिले की सीमा पर शेरघाटी में स्थायी फौजी छावनी बनानी पड़ी थी और देहरी घाट (आज सोन नदी तट का सबसे बड़ा शहर डेहरी-आन-सोन) में सेना का पड़ाव-स्थल (मौजूदा पड़ाव मैदान) बनाना पड़ा था। ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार की प्रोविन्सियल रेवेन्यू कमेटी ने राजा नारायण सिंह की गिरफ्तारी और रियासत की जमींदारी जब्त करने का आदेश दिया।

कर्नल बार्कर फौज के साथ औरंगाबाद पहुँचा। उसने सिरिस-कुटुम्बा रियासत के शाहपुर स्थित प्रशासनिक दुर्ग और फिर रियासत के पवई गाँव स्थित आवासीय दुर्ग की फौजी छावनी को नष्ट कर दिया।

राजा द्वारा कर भुगतान न करने पर सिरिस-कुटुम्बा रियासत से लगान वसूलने के लिए कंपनी सरकार ने सजावल की नियुक्ति की। 20 अप्रैल, 1781 को रेवेन्यू अफसर मैक्सवेल द्वारा पटना रेवेन्यू कमेटी को लिखे पत्र से जानकारी मिलती है कि सिरिस-कुटुम्बा रियासत पर 37,651 रुपये बकाया थे। सजावल कुली खान रैयतों से माल (कर) वसूल करने में सक्षम नहीं हुए। ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1783 में बंगाल के नवाब अशरफ अली खाँ के बेटे बाबर अली खाँ को पवई रियासत से मालगुजारी वसूलने का ठेका डेढ़ लाख रुपये में दे दिया। बाबर अली खाँ भी पवई रियासत से माल (कर) वसूल करने में सफल नहीं हुए। राजा की जमींदारी छिन जाने के बाद सिरिस-कुटुम्बा रियासत के रैयतों (किसानों) ने भी अंग्रेजी सरकार को मालगुजारी नहीं दी। तब के जमाने में मालगुजारी नहीं देना प्रजा (रैयतों) की अंग्रेजी राज के प्रति बहुत जबरदस्त प्रतिक्रिया थी। तब वह जमाना था, जब रियासतों की लड़ाई में रैयतों की कोई सहभागिता नहीं होती थी और राजा को युद्ध की कमान खुद ही सँभालनी पड़ती थी।

पंचवन की गुफा में शरण लिए हुए राजा नारायण सिंह ने बनारस के राजा चेत सिंह के श्वसुर पिताम्बर सिंह (टेकारी, गया), चेत सिंह के फौजदार बेचू सिंह और सासाराम परगना के आमिल (वित्त प्रमुख) कुली खाँ की मदद से तीन-चार सौ लड़ाकुओं को संगठित किया, जो मौका देख अंग्रेजी फौज पर गुरिल्ला हमला करते थे। जब राजा नारायण सिंह ने रोहतास में भैरवाँ पहाड़ी के पास अंग्रेजी फौज को आगे बढ़ने से रोक दिया और भयंकर मार-काट की, तब अंग्रेजों ने तय किया कि राजा के स्वतंत्र रहते कंपनी सेना और प्रशासन चैन की नींद नहीं सो सकते। शेरघाटी के उप समाहर्ता चार्टर्स ने गवर्नर जनरल को रिपोर्ट भेजी थी कि राजा नारायण सिंह शांति भंग कर सकता है। अंग्रेजों ने उन्हें छल से गिरफ्तार करने की नीति अपनाई। उन्हें पटना में गवर्नर से समझौता-वार्ता के बहाने बुलाया गया। जंगल में डोली और घुड़सवार भेजकर राज-सम्मान देने का नाटक किया गया। मई 1783 को मेजर जेम्स क्राफोर्ड ने रेवेन्यू कमेटी से वार्ता के लिए उनके दो विश्वासपात्र कारिंदों, 20 बेगारों और पाँच घुड़सवारों के साथ डोली (पालकी) भेजी। राजा अपने भाइयों-पट्टीदारों से मंत्रणा करने के बाद पटना गए। उन्हें महाराजा की उपाधि देने का लोभ दिया गया। मगर राजा की धमनियों में तो मुस्लिम शासकों से सदियों से टक्कर लेते आए पृथ्वीराज चौहान के वंश का रक्त बह रहा था। उन्होंने फिरंगियों से दो-टूक शब्दों में कहा, "अंग्रेज बिहार को बख्श दें।" राजा को गिरफ्तार कर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। 05 मार्च, 1786 को उन्हें काला पानी की सजा सुनाई गई और राजबंदी के रूप में ढाका (बांग्लादेश) के बेगम हवेली जेल भेज दिया गया।

ईस्ट इंडिया कंपनी की रेवेन्यू कमेटी के प्रमुख डब्ल्यू. ब्रूक द्वारा दानापुर (पटना) छावनी के कमांडिंग अफसर मेजर एलेक्जेंडर हार्डी को लिखे गए पत्र से पता चलता है कि राजा के साथ निजी गार्ड के रूप में गणेशी हरवाहा को भी ढाका जेल में रखा गया था। राजा 1792 में जेल से रिहा किए गए। अंग्रेजों को सिरिस-कुटुम्बा रियासत की जमींदारी राजा नारायण सिंह को ही 16 हजार 45 रुपये के वार्षिक लगान पर सौंपनी पड़ी। जेल की यातनापूर्ण स्थिति में रहने के कारण दो साल बाद ही कार्तिक (नवंबर) माह में 1794 में राजा की मौत हो गई। राजा की मौत के बाद सिरिस-कुटुम्बा रियासत की जमींदारी का ठेका कोलकाता के श्यामबिहारी मित्र को सौंप दिया गया, जिनके नाम पर कोलकाता में आज भी शाम (श्याम) बाजार है।

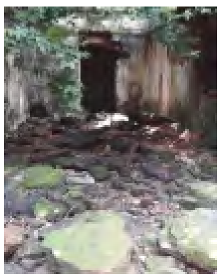

न तो राजा नारायण सिंह के किला की सुरक्षा हुई और न ही उनकी प्रामाणिक जीवनी लिखी गई। पवईगढ़ की न तो सरकार और न ही परिवार-समाज ने सुरक्षा की। खंडहर बन चुका किला जमींदोज होने के आखिरी कगार पर है। गाँव के लोग किले की नींव से सटी जमीन से मिट्टी खोदकर ले जाते हैं। मिट्टी खोदने से बने गड्ढे में प्राचीन बरतनों के कटे-टूटे टुकड़े पवईगढ़ की प्राचीन कहानी पर आँसू बहा रहे हैं। पवई का सदियों पुराना तालाब भर चुका है। तालाब निर्माण के वक्त बना प्राचीन मंदिर भी नष्ट हो चुका है और उसका गुंबज जमीन पर धूल-धूसरित टोपी की तरह पड़ा हुआ है। बटाने नदी के किनारे महज दो गज जमीन पर बना राजा का समाधि-स्थल वीराने में लावारिस पड़ा श्रद्धा के दो फूल से मोहताज जमींदोज हो चुका है।

प्राचीन भारत में ईंट

प्रकारांतर से ही कला के क्षेत्र में भारत का विशिष्ट स्थान रहा है। प्राच्य काल से ही यहाँ कलात्मक क्षेत्र में नित्य नूतन प्रयोग किए गए जिनमें ईंटों का अपना अलग स्थान है। वास्तु कला के विविध आयाम यथा भवन निर्माण कला, स्थापत्य, स्मारक कला, स्तूप-चैत्य व विहार निर्माण कला के साथ-साथ छोटे-बड़े देवालयों व धार्मिक स्मारक बनाने में ईंटों का प्रयोग खुलकर किया गया है और ईंट निर्माण के क्षेत्र में इस भूमि पर हरेक काल में कुछ-न-कुछ अभिनव प्रयोग होता रहा। यही कारण है कि यहाँ हरेक ऐतिहासिक काल खंड के ईंटों की अपनी अलग पहचान है।

डॉ. राकेश कुमार सिन्हा 'रवि'

जन्म : 18 जून, 1967, गया, बिहार

शिक्षा : पीएच.डी., डी.लिट.

संप्रति : 25 वर्षों से अधिक समय से अध्यापन

प्रकाशन : श्री कायस्थ कुल दर्पण, इतिहास के ऐना में मगध, धरोहर मगध के खंड-1, 2, 3, दास्तान-ए-गया, पंचतंत्र की कहानी, तीर्थों का देश भारत, देश के सभी शोध जर्नल, दैनिक, पाक्षिक व मासिक में आलेख प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9934463552

ई-मेल–kumar.drrakesh85@gmail.com

सर्वप्रथम यह तर्क विवेच्यपूर्ण प्रश्न है कि संसार में सबसे पहले ईंट का निर्माण कहाँ हुआ? इस पर अनेकानेक मत भले मिलते हों, पर यह सर्वमान्य ऐतिहासिक तर्क है कि सैंधव कालीन स्थलों में ईंट का निर्माण बहुतायत हुआ है। उल्लेखनीय है कि सिंधु घाटी की समकालीन मिस्त्री सभ्यता में पक्की ईंटों का प्रयोग नहीं किया गया तो मेसोपोटामिया में भी उनका सीमित मात्रा में ही प्रयोग के विवरण उपलब्ध होते हैं। सैंधव घाटी सभ्यता के स्थलों में उस जमाने में मकान, नालियाँ, स्नानगृह, फर्श, सीढ़ियाँ आदि पकाई गई ईंटों की सहायता से बनते थे और ईंटें प्रायः चतुर्भुजाकार होती थीं।

सिंधु घाटी संस्कृति की विशेषताओं में एक है नगर योजना प्रणाली, जहाँ के सभी मकान पक्की ईंटों के बनाए जाते थे। इन ईंटों पर किसी प्रकार का कोई चित्र नहीं मिलता। कहीं-कहीं कुत्ते अथवा कौवे का चित्रण अस्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अभी तक ज्ञात इस सभ्यता संस्कृति के 1500 स्थलों के बीच सप्त प्रधान नगरों यथा हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोथल, चन्हुदड़ो, कालीबंगा, बनावली, धौलावीरा आदि स्थलों से ईंटों की प्राप्ति इस तथ्य का प्रमाण है कि यहाँ के जन-जीवन में ईंटों का विशिष्ट अवदान रहा है।

इन स्थलों से प्राप्त सबसे बड़ी ईंट 51.43x26.27x6.35 से.मी. आकार की है। सामान्यतः यहाँ 27.94x13.97x6.35 से.मी. अर्थात 4:2:1 के आकार की ईंटों का प्रयोग किया गया है, जबकि सबसे छोटी ईंट का आकार 24.13x11.05x5.08 से.मी. आकार का है। सैंधव कालीन स्थलों में बड़े व ऊँचे दीवार, वृहत् स्नानागार, अन्नागार, सभा भवन, पुरोहित आवास, अग्नि कुंड, जहाजों की गोदी, कुएँ का बाहरी जगत् और यहाँ के संभ्रांत निवासियों का भवन प्रायः ईंटों के ही

बने थे। कुल मिलाकर तीन तरह की ईंटों का प्रयोग बहुतायत में किया गया है।

आगे ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों के स्थल में प्रायः मिट्‌टी के गारे, घास-फूस, बाँस-बल्ली व छोटे-बड़े पाषाण खंड से भवन बनाए जाते थे, पर गिलुण्ड में पक्की ईंटों के प्रयोग के साक्ष्य स्पष्टतः प्राप्त होते हैं। वृहत्पाषाण समाधियों के निर्माताओं ने भी अपनी सुविधा के अनुरूप ईंट का निर्माण किया जिसके प्रयोग कतिपय समाधियों पर आज भी देखे जा सकते हैं।

“ प्राच्य मौर्य काल भारतवर्ष में खासकर गंगाघाटी में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रहा है और इस युग में गंगा के किनारे के स्थलों में बड़ी संख्या में ईंट बनाई गई। इतिहासकारों का मानना है कि भारतवर्ष में द्वितीय नगरीकरण में सर्वाधिक योगदान ईंटों का रहा है। इस युग में कौशांबी में उत्तरी काली चमकीली संस्कृति से संबंधित निर्माण के जो आठ स्तर प्राप्त हुए है, उनमें पाँच मिट्‌टी व कच्ची ईंटों के और ऊपर के शेष तीन स्तर पक्की ईंटों के बने हैं। ”

तथागत बुद्ध के निर्वाणोपरांत भारतीय प्रायद्वीप में स्तूप निर्माण की जो परंपरा स्थापित हुई, उसमें ईंटों का सम्यक योगदान रहा। इसमें कच्ची व पक्की दोनों तरह के ईंटों का प्रयोग हुआ है जो वक्राकार, गोलाकार व आयताकार के साथ-साथ वर्गाकार भी हैं।

प्राचीन स्तूप भीतर से खोखले या ठोस कच्ची ईंटों के बने हैं और पत्थर की रेलिंग से परिवृत्त हैं। मिट्‌टी की ईंटों से बने होने पर भी उन्हें ऊपर से पक्की जुड़ाई कर मजबूती प्रदान की जाती थी।

प्राच्य मौर्य काल भारतवर्ष में खासकर गंगाघाटी में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रहा है और इस युग में गंगा के किनारे के स्थलों में बड़ी संख्या में ईंट बनाई गई। इतिहासकारों का मानना है कि भारतवर्ष में द्वितीय नगरीकरण में सर्वाधिक योगदान ईंटों का रहा है। इस युग में कौशांबी में उत्तरी काली चमकीली संस्कृति से संबंधित निर्माण के जो आठ स्तर प्राप्त हुए है, उनमें पाँच मिट्‌टी व कच्ची ईंटों के और ऊपर के शेष तीन स्तर पक्की ईंटों के बने हैं। यहाँ घोषिताराम की खुदाई से एक विहार मिला है जिसके चारों ओर ईंटों की दीवारें बनी हैं। हस्तिनापुर से मिले भवन खंड इस तथ्य के प्रमाण हैं कि वहाँ अच्छी किस्म की पक्की ईंटें बनाई जाती थीं। वैशाली से भी ईंटों के मकान व दीवार की प्राप्ति हुई है। इस युग में राजगृह, बोधगया, उज्जैन, साकेत व चम्पा के साथ काशी क्षेत्र में भी ईंटों से बने भवनों के अवशेष उत्खनन से प्राप्त हुए हैं।

पिपरहवा से प्राप्त बौद्ध स्तूप ईंट निर्माण का एक उत्कृष्ट उदाहरण है जो करीब 20 फीट ऊँचा है। तथागत के निर्वाण के बाद

जो आठ मौलिक स्तूप बने उनके निर्माण में ईंटों का ही प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है। इसके साथ ही साँची, भरहूत, अमरावती, बोधगया आदि स्तूप, उसकी परिवेष्टनी, प्रदक्षिणा पथ व दीवारों में ईंट का प्रयोग देखा जा सकता है। अशोक कालीन राजप्रासाद (पाटलिपुत्र) में भले ही ईंटों का प्रयोग बहुत कम है, पर इस युग में ईंट के बहुउद्‌देशीय उपयोग से इनकार नहीं किया जा सकता।

भारतीय इतिहास का स्वर्ण काल अर्थात गुप्त युग में ईंट निर्माण का नया दौर प्रारंभ हुआ। इस युग में आवश्यकता के अनुरूप बड़ी ईंटों के निर्माण का क्रम प्रारंभ हुआ। इसी युग में उत्तर भारत में विशेषकर गंगाघाटी में अनेक देवालयों का निर्माण ईंट से किया गया। कानपुर के भीतरगाँव का मंदिर, सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर, बोधगया का महाबोधि व कोंच (गया) का शिव मंदिर ईंटों से ही निर्मित हुआ है। गुप्तकाल में ईंट निर्माण में लगे लोगों की गणना समाज में शिल्पी वर्ग के अंतर्गत की जाती थी। इसके बाद ही ईंट की बड़ी-बड़ी संरचना का निर्माण पूरे देश में किया जाने लगा। इस युग का प्रधान स्थल नालंदा में 18”x13”x4” आकार की तो पुरास्थल धराउत (जहानाबाद) में 15”x9”x3” आकार की ईंटों का प्रयोग ज्यादातर किया गया है। राजगीर के मनीयार मठ में इसी जमाने की गोल ईंट देखी जा सकती है जो पूरे देश में अनूठी व विअलग है।

दक्षिण भारत में पल्लव, राष्ट्रकूट व चोल राजवंश के निर्माण खंडों में ईंटों का प्रयोग स्पष्टतः देखा जा सकता है। दक्षिण भारत में

ईंट निर्माण करने वाले एक वर्ग ही था जिनका समाज में आदर सम्मान कायम था। बड़े-बड़े निर्माण के उद्देश्य से ईंट निर्माताओं को गाँव में बसाने के भी वृत्तांत मिलते हैं ताकि ईंट सहज रूप में प्राप्त हो सके।

पालकाल में ईंट निर्माण में एक नई गति आई और ईंट पतली व टिकाऊदार बनाई जाने लगी। इसने आगे चलकर 'लाहौरी ईंट' के रूप में ख्याति पाई जिसे कहीं-कहीं 'गदहिया ईंट' भी कहा जाता है।

मध्यकालीन भारत में खासकर मुगलों के जमाने से पूरे देश में ईंट निर्माण की एक नई तकनीक विकसित हुई। धीरे-धीरे ईंट निर्माण एक उद्योग का रूप लेने लगा जिसके प्रायशः केंद्र नदी के किनारे स्थापित किए जाते थे। बड़े-बड़े किले, देवालय, मजार, मस्जिद व महल बनाने के लिए पास में ही ईंट निर्माण के उद्देश्य से कारीगरों को बसाया जाने लगा और इस क्रम में कितने

ही गाँव-नगरों का नाम ईंट पर ही आधारित जान पड़ता है।

कई किलोमीटर लंबी ईंटों की दीवार व दरवाजे के मिलने के कारण ही अरुणाचल प्रदेश की राजधानी का नाम 'ईटानगर' दिया गया है तो चौहान राजपूत समर शाह द्वारा स्थापित नगरी 'इटावा' के नामकरण का आधार ईंट ही है। मध्य प्रदेश का 'इटारसी', झारखंड का 'ईंटखोरी' और बिहार का 'इंटवाँ', 'इटहरी' व 'इष्टिकापुर' का संबंध ईंट निर्माण से जुड़ा है। कनार्टक के रायचूर जिले में एक स्थान 'इट्टागी' है जहाँ चालुक्य कालीन मंदिर में उत्कृष्ट ईंटों का प्रयोग दर्शनीय है।

उड़ीसा शैली के मंदिर निर्माण में भी ईंटों का अमूल्य योगदान है। यहाँ कोणार्क मंदिर के प्रधान शिल्पी विशु को कितने ही कथानकों में उत्तम ईंटों का निर्माता बताया गया है तो कश्मीर कला के इतिहास में राजा अनंगपाल को 'ईंटों का जन्मदाता' बताया जाता है।

आंध्र प्रदेश के नलगोडा जिले में अवस्थित 'इट्टर' का संबंध भी ईंट से है। यहाँ टूटी-फूटी ईंटों का विशाल भंडार मिला है। इसके साथ ही दक्षिण में हम्पी, एहोल, कांची, चिदंबरम, मदुरई, विजयनगर, मैसूर आदि नगरों से पुरातन काल की उत्कृष्ट ईंटों की प्राप्ति इस बात का संकेत है कि समाज में ईंटों का प्रयोग कितने ही स्थानों पर होता रहा है।

अंग्रेजों के आगमन के बाद संपूर्ण भारतीय क्षेत्र में ईंट के अधिकाधिक निर्माण को देखते हुए कितने ही स्थानों पर ईंट भट्टे

बनाए गए। सस्ते मजदूर, कच्चे माल की उपलब्धता व साल भर जलराशि की उपलब्धता ने इस कार्य को एक उद्योग की श्रेणी में खड़ा कर दिया जिससे जुड़कर कितने लोगों की जीवन दिशा बदल गई।

नए जमाने में कितने ही पुरास्थलों के उत्खनन से ईंटों के समृद्ध संसार का स्पष्ट पता चला है। ईंट निर्माण में स्थानीय शिल्पकृति व निर्माण शैली का विशेषकर प्रयोग किया गया है। नदी के किनारे के स्थल के ईंटों में बालू की राशि की अधिकता है तो पर्वतीय खंड के ईंटों में पाषाण चूर्ण का भी कमोबेश प्रयोग दृष्टव्य है। अभी हाल में तेल्हाड़ा (नालंदा) व कुटुम्बा (औरंगाबाद) के उत्खनन से स्पष्ट हुआ है कि एक ही स्थान पर कम-से-कम चार आकार-प्रकार की ईंटें बनाई गईं। बिहार विरासत विकास समिति के प्रधान व चर्चित पुराविद् डॉ. विजय कुमार चौधरी का मानना है कि आवश्यकतानुरूप ईंटों को आकार दिया जाता था ताकि निर्माण कार्य के क्रम में ईंटों को बहुत कम तोड़ना पड़े।

अस्तु! ईंटों का महत्व प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीन तक अक्षुण्ण बना हुआ है। ये सभी ईंटें जहाँ-जहाँ प्राचीन सभ्यता संस्कृति के गवाह हैं वहीं निर्माण कार्य का मुख्य आधार हैं। सचमुच प्राचीन भारत ईंट के लिए विश्वप्रसिद्ध है जहाँ निर्मित उच्च कोटि की ईंटों की चर्चा संपूर्ण जगत में है।

ज्ञानपीठ है जंगमवाड़ी मठ

काशी के जंगमवाड़ी मठ का प्राचीन संस्कृत की भाषा और साहित्य के संवर्धन और उन्नयन में बड़ा योगदान है। इस मठ की स्थापना छठी शताब्दी में की गई थी। इसमें पुस्तकालय के साथ-साथ एक शोध संस्थान है जिसने एक सौ से अधिक ग्रंथों का प्रकाशन किया है। अभी हाल ही में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने बहुप्रतीक्षित धार्मिक पुस्तक 'श्री सिद्धान्त शिखामणि' ग्रंथ के 19 भाषाओं में अनूदित हिंदी संस्करण तथा इसके मोबाइल ऍप का उद्घाटन किया है। संस्कृत भाषा और दूसरी भारतीय भाषाओं को ज्ञान का माध्यम बनाते हुए तकनीकी का समावेश भी मठ कर रहा है। पुस्तक प्रकाशन योजना के अंतर्गत मठ की दो इकाइयाँ हैं—एक है शिव भारत भवन और दूसरी शिव भारती

शोध प्रतिष्ठान। इन इकाइयों द्वारा संस्कृत और आगम पर भी शोध की गई सामग्री का राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय भाषाओं में प्रकाशन किया जाता है। मठ में उच्च संस्कृत शिक्षा के अध्ययन की व्यवस्था है। छात्रों के रहने और भोजन की मुफ्त व्यवस्था है।

इस मठ में एक सुंदर सुव्यवस्थित पुस्तकालय भी है, जहाँ उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के 'गोदान' से लेकर ताड़पत्रों पर लिखे प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ रखे हुए हैं। प्राचीन सांस्कृतिक घटनावली की विश्वशृंखल कड़ियों को एक सूत्र में बाँधने के कार्य में संलग्न इतिहास के विद्यार्थियों के शोधकार्य के लिए यहाँ अनेक वस्तुओं का संग्रह प्रस्तुत है। इन संग्रहों में पुराने जमाने में ताम्रपत्र एवं ताड़पत्र पर लिखने के साधन-कलम आदि भी हैं जो अपने निरालेपन के कारण देखने की वस्तु बन गए हैं। मठ में विद्यार्थियों के रहने का भी प्रबंध है जो अधिकांश दक्षिण के हैं। ये विद्यार्थी संस्कृत तो पढ़ते ही हैं विश्वविद्यालय में बी.ए., एम.ए., की उच्च शिक्षा भी प्राप्त करते हैं। इनका पूरा खर्च मठ से दिया जाता है। इनकी सर्वतोमुखी

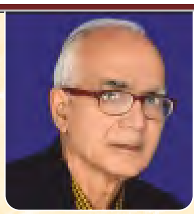

निरंकार सिंह

जन्म : 01 जनवरी, 1952, बाराबंकी (उत्तर प्रदेश)

शिक्षा : विज्ञान स्नातक

संप्रति : नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिंदी विश्वकोश' के सहायक संपादक के रूप में कार्य। साथ ही विभिन्न समाचार पत्रों में सहायक संपादक की भूमिका निभाई। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : मोबाइल— 9451910615

ई-मेल— nirankarsi@gmail.com

प्रतिभा के विकास के लिए समय-समय पर विद्वत गोष्ठियों का भी प्रबंध किया जाता है।

जंगमवाड़ी मठ को 'ज्ञान सिंहासन' अथवा 'ज्ञान पीठ' भी कहा जाता है। लेकिन यह जंगमवाड़ी मठ के नाम से ही अधिक लोकप्रिय है। 'जंगम' का अर्थ है—शिव को जानने वाला और 'वाड़ी' का अर्थ है—रहने का स्थान। जिस स्थान पर शिव को जानने वाले रहते हैं उसे 'जंगमवाड़ी' कहा गया है। इस मठ के सभी पीठाधिपति शैव संप्रदाय

"जंगमवाड़ी का वर्तमान मठ लगभग 50 हजार वर्गफुट में फैला है। इसके मुख्य द्वार के बाद धर्मरत्न कल्याणी महाद्वार है। मठ के इस द्वार के बाद शिव मंदिर है। इस मठ का संपूर्ण परिसर शिवलिंगों से भरा हुआ है। चारों ओर सुव्यवस्थित ढंग से रखे शिवलिंगों की एक के बाद एक पंक्तियाँ भी हैं और ऊपर की ओर सीढ़ीनुमा कतारों में सजाई गई हैं। यहाँ कई कक्ष हैं जो शिवलिंगों से भरे हैं। मंदिर के भीतर प्रत्येक बड़ा शिवलिंग हजारों लघु शिवलिंगों से घिरा हुआ है।"

के ज्ञाता रहे हैं। शैव मतावलंबियों के कई संप्रदाय हैं और यह मठ वीर शैव या लिंगायत संप्रदाय का है। इस संप्रदाय के लोग केवल शिव लिंग की आराधना करते हैं, अन्य किसी देवी-देवता अथवा पंथ की उपासना नहीं करते। ये जाति-भेद में भी विश्वास नहीं करते। इसके

अधिसंख्य अनुयायी कर्नाटक और महाराष्ट्र से आते हैं। वीरशैव संप्रदाय को चार श्रेणियों में बाँटा गया है। इसमें जंगम या लिंगायत संप्रदाय का साहित्य मुख्य रूप से कन्नड़ भाषा में है। जंगमवाड़ी का वर्तमान मठ लगभग 50 हजार वर्गफुट में फैला है। इसके मुख्य द्वार के बाद धर्मरत्न कल्याणी महाद्वार है। मठ के इस द्वार के बाद शिव मंदिर है। इस मठ का संपूर्ण परिसर शिवलिंगों से भरा हुआ है। चारों ओर सुव्यवस्थित ढंग से रखे शिवलिंगों की एक के बाद एक पंक्तियाँ भी हैं और ऊपर की ओर सीढ़ीनुमा कतारों में सजाई गई हैं। यहाँ कई कक्ष

हैं जो शिवलिंगों से भरे हैं। मंदिर के भीतर प्रत्येक बड़ा शिवलिंग हजारों लघु शिवलिंगों से घिरा हुआ है।

कैलाश मंडप जो मठ के संस्थापक जगतगुरु विश्वाराध्य की मूल पीठ है। जगतगुरु का दरबार हॉल, हरिश्वर मंदिर, जन मंदिर पुस्तकालय, श्री जगतगुरु विश्वेश्वर नित्य आनंद क्षेत्र, श्री जगतगुरु विश्वाराध्य गुरुकुल, भक्त निवास, गणेश हॉल, स्टाफ क्वार्टर और शोभा मंडप आदि मठ में यथोचित स्थान पर बने हैं। काशी में दूर से आने वाले श्रद्धालुओं के लिए मठ की ओर से चिकित्सा की सुविधा भी है। इसके अलावा श्रद्धालुओं की इच्छानुसार मठ में रुद्राभिषेक, कुमकुम अर्चना, लिंग स्थापना, सेतु पूजा, पिंडदान आदि कराने की भी व्यवस्था है। यह पूजा-पाठ मठ के पंडितों द्वारा कराई जाती है जो वेद एवं आगम के जानकार हैं। इनका शुल्क भी निर्धारित है। मठ की देखभाल और साफ-सफाई के लिए कर्मचारी नियुक्त हैं।

जंगमवाड़ी मठ और उसकी सारी व्यवस्था मठ के प्रमुख पीठाधिपति श्री 1008 जगतगुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी की देख-रेख में होती है। वर्तमान महास्वामी 1989 से मठ के पीठाधिपति हैं। वह इस मठ के 86वें पीठाधिपति हैं। उनका जन्म 15 अगस्त, 1949 को कर्नाटक के बागलकोट जिले में तोगुनासी नामक स्थान पर हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा कर्नाटक और उत्तर प्रदेश के संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय से हुई है। कई विषयों पर उनके शोध ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। आगम पर उन्होंने विशेष अनुसंधान और अध्ययन किया है। वे अपने धार्मिक एवं आध्यात्मिक कार्यों की व्यस्तता के बावजूद सामाजिक विकास के कार्यों का भी सफलतापूर्वक संचालन कर रहे हैं। उनका यह मत है कि योग और

अध्यात्म के द्वारा जाति और भाषा की दूरियों को खत्म किया जा सकता है और 1989 से उन्होंने लगभग पूरे देश और अन्य देशों का भी दौरा किया है। हाँगकांग, बैंकॉक और रूस जाकर उन्होंने भारतीय संस्कृति और परंपराओं का प्रचार-प्रसार किया है। दो सौ से अधिक रूसी योग शिक्षकों को उन्होंने शाकाहारी बनाकर आध्यात्मिक दीक्षा दी है।

मठ के पीठाधिपति डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य के अनुसार जंगमवाड़ी मठ मेडिकल और इंजीनियरिंग के गरीब एवं बुद्धिमान छात्रों को उनकी पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति भी देता है। इस समय 150 छात्र इस योजना का लाभ उठा रहे हैं। अन्नदान छत्र योजना के अंतर्गत काशी आने वाले श्रद्धालुओं को मठ में तीन दिन ठहरने और

भोजन की मुफ्त सुविधा दी जाती है। श्री जगतगुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान ट्रस्ट द्वारा विभिन्न कल्याणकारी सामाजिक योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। इसके अंतर्गत वाराणसी में शिव भारती शोध प्रतिष्ठान, बलुआ (चंदौली) में जंगमबाबा बाल विद्यालय, सांगवी (पूना) में विश्वेश्वर बाल विद्यालय, कर्नाटक में संस्कृत आगम, योग पाठशाला, बेंगलुरु में वीर शैव अनुसंधान संस्थान, नागपुर में महिला कुटीर उद्योग और सोलापुर वधू-वर सूचना केंद्र का संचालन किया जा रहा है। इस प्रतिष्ठान की शाखाएँ गुलबर्गा, धारवाड़ और औरंगाबाद में भी स्थापित की गई हैं। इसके अलावा जंगमवाड़ी मठ के अधीन कई मंदिरों का जीर्णोद्धार किया गया है।

छठी शताब्दी में स्थापित काशी का यह एक ऐसा मठ है जिसका ध्वंस औरंगजेब भी नहीं कर सका था। जब वह काशी आया, मंदिरों के ध्वंस अभियान में जंगमवाड़ी मठ भी पहुँचा। किंतु प्रवेश करते ही उसे लगा कोई भीमकाय, काली देव छाया उसकी ओर लाल-लाल नेत्रों से निहार रही है जो उसे निगल जाएगी। साम्राज्य और सैन्यबल से सुसज्जित सम्राट औरंगजेब काँप उठा और तत्काल बाहर आया और मठ ध्वंस का विचार त्याग उसने भी भूमि दान की। असली हस्ताक्षरयुक्त पत्र अब तक मठ में सुरक्षित है जिसमें यह सब लिखा हुआ है। हमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब तथा मुहम्मद शाह द्वारा समय-समय पर मठ को दिए गए दानपत्र भी अपने

मौलिक रूप में जीर्ण-शीर्ण अवस्था में रखे हुए हैं। हिंदू राजाओं का मठ को दान देना तो स्वाभाविक था ही, पर इन मुगल बादशाहों द्वारा मठ को दिए गए दान उनके प्रति आजकल प्रचारित हिंदू विरोधी भावनाओं का स्पष्ट खंडन करते हैं। ये दानपत्र बनावटी नहीं। इलाहाबाद हाईकोर्ट में वर्षों इनकी छान-बीन की जा चुकी है और सर यदुनाथ सरकार जैसे मुगलकाल विशेषज्ञ इतिहासकार को भी इनकी सत्यता मानने के लिए मजबूर होना पड़ा है। बनारस गजेटियर में पृष्ठ 123 पर भी इन फरमानों का स्पष्ट उल्लेख है। इन फरमानों में इस मठ को दिए गए भूमिदान का उल्लेख है। हुमायूँ बादशाह ने मिर्जापुर जिले के चुनार नामक खान में जंगमवाड़ी मठ के साधुओं के सहायतार्थ 300 बीघा जमीन दान की थी। उनके बाद के सभी मुगल बादशाहों ने इस फरमान को स्वीकार करते हुए नए फरमान भी दिए जो अब तक मठ में हैं।

इस मठ के अंतर्गत नेपाल के 'भातगाँव' नामक स्थान में भी एक जंगमवाड़ी मठ है, जिसे नेपाल नरेश जयरुद्र मल्लदेव ने विक्रमी संवत् 692 की ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को भूमिदान दिया था। नेपाल नरेश का यह दानपत्र भातगाँव में आज भी एक पत्थर पर खुदा हुआ सुरक्षित है। 1400 वर्ष पूर्व सन् 574 का एक दानपत्र आज भी मठ में सुरक्षित है, जिस पर काशी के तत्कालीन शासक श्री जयनन्द देव का यह संदेश अंकित है, जिसके अनुसार उन्होंने इस मठ को वह भूमि दान की थी, जिसमें अब काशी हिंदू विश्वविद्यालय स्थित है। कहा जाता है कि काशी विश्वनाथ मंदिर प्रारंभ में जंगमवाड़ी मठ के ही अधीन था। विश्वनाथ मंदिर की पूजा के लिए रखे गए पुजारियों तथा कुछ नागरिकों की सहायता से यह मंदिर मठ के अधिकार से निकल गया और तब से अब तक अलग और स्वतंत्र है। विश्वनाथ जी के शृंगार के दिन सजने वाली चाँदी की पंचमुखी शिवमूर्ति आज भी जंगमवाड़ी मठ में सुरक्षित है। यह पंचमुखी मूर्ति भी पुरानी है। मठ में रखे हुए उपर्युक्त ऐतिहासिक दानपत्रों के अतिरिक्त अन्य दर्शनीय वस्तुओं में वह स्थान भी है जहाँ बैठकर इस पीठ के प्रथम आचार्य ने उपदेश प्रदान किया था। महंत की गद्दी खाली होने पर नए महंत को गद्दी दी जाती है इस आसन पर उसे केवल उसी दिन बैठाया जाता है अन्यथा वह पूजा की वस्तु बनी रहती है।

जागृति : रुपहले पर्दे पर प्रदर्शित एक पाठ्यपुस्तक

कुछ फिल्में ऐसी होती हैं, जिन्हें समय या किसी शैली की सीमा में बाँधना संभव नहीं होता। 1954 में आई सत्येन बोस निर्देशित फिल्म 'जागृति' भी एक ऐसी ही फिल्म है। यह फिल्म उस समय बहुत लोकप्रिय हुई थी और आज भी उतनी ही लोकप्रिय है। यह बच्चों की पसंदीदा फिल्म है और बड़ों की भी। यह देशभक्ति की फिल्म है, गांधी जी के आदर्शों को दिखाने वाली फिल्म है, साथ ही शिक्षा प्रणाली और शैक्षणिक सुधार को लेकर बनाई गई एक अनोखी फिल्म है। इस फिल्म की प्रगतिशील विषयवस्तु उस समय की माँग थी। किंतु यह अपने समय से आगे की और सार्वकालिक फिल्म है। इसका गीत-संगीत अमर है और इसमें सभी

कलाकारों ने सहज अभिनय किया है। इसकी प्रस्तुति कसी हुई है तथा इसे अपने कथ्य के संप्रेषण में बड़ी सफलता मिली है।

'जागृति' हमें हँसाती है, रुलाती है, सपने दिखाती है और सपने को हकीकत में बदलने के लिए आवश्यक संघर्ष की राह भी दिखाती है। यह फिल्म संबंधों को जीना सिखाती है। अनेक तरह के संबंध—माँ और बेटे में ममता का संबंध, दोस्तों में 'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी' वाला संबंध, गुरु और शिष्य के बीच कुम्हार और कच्ची मिट्टी से बन रहे पात्र-सा संबंध।

फिल्म 'जागृति' भारत की आजादी की भोर में आई थी। देशभक्ति की तरंगों ने ब्रिटिश सत्ता के विशाल विषवृक्ष को समूल उखाड़ फेंका था। शहीदों की कुर्बानी ने देशप्रेम की ऐसी मशाल जलाई थी, जिसने परतंत्रता के अंधकार को मिटा दिया था। नई पीढ़ी के बाल मन में देशप्रेम की उन उमंगों को तरंगित रखना और शहादत की उस मशाल को जलाए रखना एक बड़ी चुनौती थी। यह काम सही शिक्षा द्वारा ही संभव था। नवस्वतंत्र राष्ट्र शिक्षा के पारंपरिक और औपनिवेशिक स्वरूप में बदलाव का आकांक्षी भी था। इस फिल्म में दिखाया गया है कि शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच आत्मीय संबंध और संवाद से शिक्षा की बुनियाद मजबूत हो सकती है। सच्चा शिक्षक धैर्य और प्रयत्न से 'बिगड़े' बच्चे को भी सही राह पर ला सकता है।

फिल्म में कहानी है अजय की, जो गाँव के एक बड़े घर का बिगड़ैल बच्चा है। उसकी शरारतें जब सभी सीमाएँ पार कर जाती हैं, तो उसे शहर के एक बोर्डिंग स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया जाता है। अजय यहाँ भी अपनी शैतानियाँ जारी रखता है। वह कुशाग्र है, किंतु उसकी ऊर्जा नकारात्मक दिशा में पूरे वेग से प्रवाहित हो रही है। विद्रोही और उत्पाती स्वभाव वाले अजय में दोस्ती और दुश्मनी—ये दोनों भावनाएँ प्रबल हैं। वह शीघ्र भड़क जाता है और बदला लेने के लिए किसी भी हद को हद नहीं समझता। हॉस्टल में रैगिंग द्वारा नए बच्चों का स्वागत करने वाले शरारती छात्रों को पहली मुलाकात में ही

रमेश कुमार सिंह

जन्म : 01 जनवरी, 1969

शिक्षा : बी.ए., बी.टी.सी.।

संप्रति : अध्यापन।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी से वार्ताएँ, बाल रचनाएँ, रेडियो नाटक, आकाशवाणी के लिए विभिन्न साक्षात्कार, भोजपुरी सिनेमा के बारे में साक्षात्कार प्रकाशित।

सम्मान : कहानियों के लिए हिंदी अकादमी से पुरस्कृत।

संपर्क : मोबाइल— 9810518717

पता लग जाता है कि अजय किस धातु का बना है। यहाँ भी उसकी धाक जम जाती है। बच्चे अब अजय से भिड़ने के बजाय उसे भड़का कर और बेवकूफ बनाकर शिक्षकों और हॉस्टल के वार्डन से अपनी खुन्नस निकालते हैं। खुराफाती दिमाग और छोटी-बड़ी शरारतों द्वारा अजय जल्दी ही शैतान बच्चों का नेता बन जाता है।

अजय के नेतृत्व में बच्चों द्वारा की जाने वाली आए दिन की शरारतों से तंग होकर हॉस्टल का इंचार्ज शिक्षक नौकरी छोड़कर चला जाता है। उसकी जगह शेखर नाम का एक शिक्षक आता है, जिसे नया वार्डन बनाया जाता है। शेखर धैर्य की प्रतिमूर्ति है। वह सहृदय और प्रगतिशील है। शेखर सबको सिखाता है कि यदि शिक्षक और शिष्य एक-दूसरे में दोष-ही-दोष नहीं देखें और दोषों को दूर करने का प्रयत्न करें तो सीखने-सिखाने की बोझ-सी लगने वाली प्रक्रिया भी सुखद हो जाती है।

हॉस्टल में अजय के साथ कमरे में रहता है, शक्ति। शक्ति और अजय के स्वभाव में कोई समानता नहीं। अजय के विपरीत शक्ति एक शांत, सौम्य और अध्ययनशील छात्र है। लेकिन इन दोनों का विपरीत व्यक्तित्व ही परस्पर आकर्षण का आधार बन जाता है। वे दोस्ती की डोर में बँध जाते हैं। उद्धत, उदंड और उद्दाम अजय को एक सच्चे दोस्त की तरह सही राह पर लाने की कोशिश करते-करते शक्ति एक दिन दुर्घटनाग्रस्त होकर अनंतशक्ति में विलीन हो जाता है। अजय खुद को शक्ति की मौत का जिम्मेदार मान रहा है। शक्ति की माँ की तरह अजय के लिए भी यह एक अपूरणीय क्षति है। लेकिन दोस्त के इस बलिदान से एक नए और अपराजेय अजय का जन्म होता है, जो प्रेरणा और संकल्प-शक्ति से ओतप्रोत है। उसमें अद्भुत परिवर्तन आता है।

अजय को शेखर जैसे महान मार्गदर्शक से नई दिशा मिलती है। शेखर अजय की क्षमता को पहचान लेता है और अपने इस छात्र को सक्षम बनाने में सहायता करता है। अजय अब हर क्षेत्र में अव्वल आता है। जो कभी दुर्निवार था, वही अब सबका दुलारा बन जाता है।

शेखर बच्चों को कोर्स की किताबों के अलावा दुनिया की किताब भी पढ़ाता है, उसे पंख देता है, उड़ने की आजादी देता है और कहता है कि उड़ो और आकाश को छू लो। वह खेल-कूद को शिक्षा का एक उत्कृष्ट माध्यम मानता है। शिक्षा के क्षेत्र में शेखर के प्रगतिशील विचारों और प्रयोगों का रूढ़िवादी शिक्षकों द्वारा जमकर विरोध किया जाता है। उसका मजाक उड़ाया जाता है। लेकिन शेखर में आत्मविश्वास है और उसे अपने विद्यार्थियों पर भी उतना ही विश्वास है।

शेखर एक सद्गुरु है। कबीर-वर्णित सद्गुरु, जो कच्ची मिट्टी जैसे शिष्यों को गढ़ता है। कबीर कहते हैं, 'गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़ि-गढ़ि काढ़े खोट। अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट।' यह एक गुरु की अप्रतिम, अनन्य और अन्यतम परिभाषा है। शेखर इसका साक्षात उदाहरण है। शेखर स्वप्नदर्शी, अंतर्दर्शी और दूरदर्शी शिक्षक है। वह जानता है कि उसके जैसे शिक्षकों के कंधों पर ही भारत के लिए मजबूत कंधों वाले भावी नागरिक बनाने की महती जिम्मेदारी है।

जहाँ दूसरे शिक्षकों का मानना है कि अजय एक लाइलाज मर्ज है, प्रॉब्लम चाइल्ड है, जो कभी सुधर नहीं सकता और जिसे स्कूल से

निकाल देना चाहिए। वहीं शेखर के लिए अजय अन्य बच्चों जैसा ही मासूम है। बल्कि उसे तो अजय में कई अच्छाइयाँ दिखती हैं। वह कहता है कि अजय निडर है, उसमें सच कहने का साहस है और वह नए-नए आइडिया सोच सकता है। आह! इस महान शिक्षक को बच्चों की शरारतों में भी उनकी उर्वर कल्पनाशक्ति और रचनात्मकता दिखती है। वह उन्हें सकारात्मक दिशा देने में विश्वास करता है। उस समाज में, जहाँ अभिभावक, शिक्षक और शिक्षा व्यवस्था बच्चों को दंड के सहज पात्र के रूप में देखते हैं और पिटाई को ही अनुशासन का एकल उपाय मानते हैं, शेखर की सोच अलग है। शेखर मानता है और सिद्ध कर देता है कि बच्चों को सजा देकर नहीं, बल्कि निरपेक्ष तथा शर्तहीन प्रेम द्वारा ही जीता और सुधारा जा सकता है।

अजय शिक्षकों से वजह-बेवजह मार खाता रहता है। वह कहता है, बड़ा होकर मैं स्कूल में मार बंद करवा दूँगा। बच्चों को शारीरिक या मानसिक रूप से दंडित करना आज कानूनन अपराध है। समस्त शिक्षाशास्त्री सहमत हैं कि 'स्पेअर द रॉड एंड स्पायल द चाइल्ड' की सोच बिलकुल अवैज्ञानिक और अमनोवैज्ञानिक है। यही बात पचास के दशक में 'जागृति' का जागरूक शिक्षक शेखर अपने साथियों को समझाता है। उसके मन में स्कूल के बच्चों के लिए माँ जैसी ममता है,

बुद्ध जैसी करुणा है। उसका सदय और धैर्यवान हृदय जब एक बार अजय की शरारतों के कारण आपा खो देता है, तब इसका उसे बहुत पश्चाताप होता है।

बच्चों को देश की विविधता में समाहित एकता के दर्शन कराने के लिए प्रतिबद्ध शिक्षक शेखर उन्हें एक लंबी रेल-यात्रा पर ले जाता है। इस क्रम में वह उन्हें देश की भौगोलिक विशेषताओं, ऐतिहासिक

“फिल्म ‘जागृति’ की सफलता में कवि प्रदीप की कलम से निकले इन गीतों का महत्वपूर्ण योगदान है। जिस कवि ने स्वतंत्रता संघर्ष के समय, ‘दूर हटो ऐ दुनिया वालों, हिंदुस्तान हमारा है’—गाकर देश के दुश्मनों को ललकारा था, आजादी के बाद वही कवि अपने गीतों द्वारा देश के नौनिहालों को नवजागृत हिंदुस्तान के गौरवशाली इतिहास और वैविध्यपूर्ण भूगोल की झाँकियाँ दिखाता है।”

घटनाओं और महापुरुषों की गौरव-गाथा को जोशीले अंदाज में सुनाता है। ‘आओ बच्चों तुम्हें दिखाएँ झाँकी हिंदुस्तान की’ गीत एक अद्भुत शैक्षणिक यात्रा-गीत है, जो भारत-दर्शन कराता है। भारत में चतुर्दिक व्याप्त स्वतंत्रता की चेतना का बयान करती यह वीर-गाथा आज भी हरेक भारतीय को उसी तरह रोमांचित करती है।

अंततः शेखर के सहकर्मियों के दृष्टिकोण में बदलाव आता है। वे शिक्षक के रूप में शेखर के प्रयोगों का समर्थन करते हैं और उसे अपनाते हैं। यह शेखर की एक बड़ी सफलता है। सिद्ध हो जाता है कि शेखर जैसे शिक्षक हों तो सभी शैक्षणिक लक्ष्य संभव है। शेखर का प्रभामंडल समूचे परिवेश में सकारात्मक उजास भर देता है। वह बच्चों के साथ-साथ शिक्षकों के लिए भी आदर्श व्यक्तित्व बन गया है। अपने विद्यालय के विद्यार्थियों में नई चेतना की धारा बहाकर वह भगीरथ ज्ञान की गंगा को अन्यत्र और सर्वत्र प्रवाहित करने के लिए निकल पड़ता है।

‘जागृति’ सत्येन बोस निर्देशित बांग्ला फिल्म ‘परिबर्तन’ (1949) का परिवर्द्धित हिंदी संस्करण है। सत्येन बोस ने ‘परिबर्तन’ में उस परिवर्तनकामी अध्यापक की भूमिका स्वयं निभाई थी, जिस भूमिका को ‘जागृति’ में अभि भट्टाचार्य ने अमर कर दिया। सत्येन बोस की फिल्मों की विषयवस्तु में विविधता है। फिल्मों में बच्चों से सहज अभिनय करवा लेने में सत्येन बोस जैसे कुशल और कामयाब निर्देशक कम ही हुए हैं। फिल्म ‘जागृति’ और उनकी ही फिल्म ‘दोस्ती’ (1964) इसके उदाहरण हैं।

सत्येन बोस की दूसरी फिल्मों की तरह ‘जागृति’ का गीत-संगीत भी यादगार है। इस फिल्म का एक गीत माँ को समर्पित है और तीन गीत भारत माता को। गायक-गीतकार पंडित प्रदीप के इन गीतों को हेमंत कुमार ने संगीत दिया है। कवि प्रदीप ने इस फिल्म के एक

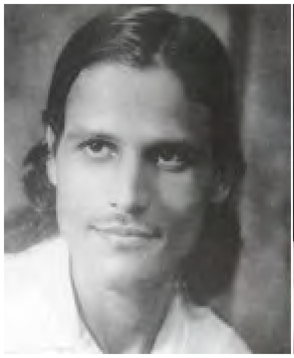

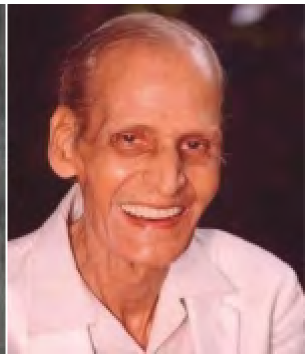

महाप्राण, अमित ऊर्जावान गीत—‘आओ बच्चों तुम्हें दिखाएँ झाँकी हिंदुस्तान की’, को गाया भी है। इस फिल्म में मोहम्मद रफी का गाया एक गीत है—‘हम लाए हैं तूफान से कश्ती निकाल के, इस देश को रखना मेरे बच्चों सँभाल के’। यह एक आह्वान और उद्‌बोधन गीत है। इसमें आशा भोंसले के स्वर में दो गीत हैं। उनकी आवाज में ‘चलो चलें माँ’ गीत करुण रूप में दुबारा आता है। ‘दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल’ गीत साबरमती के संत यानी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को दी गई एक अनुपम भावभीनी श्रद्धांजलि है। ‘जागृति’ के देशभक्ति गीतों की गिनती हिंदी फिल्म संगीत के अपार लोकप्रिय गीतों में होती है। ये गीत आज भी राष्ट्रीय त्योहारों पर बजते हैं और इनसे देशभक्ति के सभी कार्यक्रम सजते हैं।

फिल्म ‘जागृति’ की सफलता में कवि प्रदीप की कलम से निकले इन गीतों का महत्वपूर्ण योगदान है। जिस कवि ने स्वतंत्रता संघर्ष के समय, ‘दूर हटो ऐ दुनिया वालों, हिंदुस्तान हमारा है’—गाकर देश के दुश्मनों को ललकारा था, आजादी के बाद वही कवि अपने गीतों द्वारा देश के नौनिहालों को नवजागृत हिंदुस्तान के गौरवशाली इतिहास और वैविध्यपूर्ण भूगोल की झाँकियाँ दिखाता है। आजादी हमें किन कुर्बानियों से हासिल हुई है, यह बताता है और भयंकर तूफान से निकालकर लाई गई देश की कश्ती की पतवार सँभालने की प्रेरणा देता है।

देशप्रेम और शिक्षा में सुधार का संदेश देने वाली ‘जागृति’ एक सदाबहार फिल्म है। एक अच्छी फिल्म कितनी उत्प्रेरक हो सकती है, कितने लोगों को जगा सकती है, इसका उत्कृष्ट उदाहरण है ‘जागृति’। कई को पीढ़ियों को प्रेरणा देती रहने वाली ऐसी फिल्म कभी-कभार ही बनती है।

बुंदेली उत्सवधर्मिता

बुंदेलखंड एक सांस्कृतिक इकाई है जिसकी भौगोलिक सीमा विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से निर्धारित की है, लेकिन जो सर्वमान्य है, उसके अनुसार चंबल और टोंस तथा नर्मदा और यमुना के बीच का भू-भाग बुंदेलखंड है। यह भू-भाग राजनैतिक रूप से भले ही दो प्रांतों में विभक्त हो, किंतु सांस्कृतिक रूप से एक है। बोली-बानी में समानता है, खान-पान, पहनावा एक-सा है। रीति-रिवाज एक-से हैं और तीज-त्योहार मनाने के ढंग भी एक हैं। तीज-त्योहार लोक की सामूहिकता प्रसन्नता की अभिव्यक्ति होते हैं। इन्हीं तीज-त्योहारों को 'उत्सव' की संज्ञा दी जाती है। किसी भी अंचल के लोक उत्सव वे होते हैं, जो लोक द्वारा लोकहित के लिए आयोजित होते हैं। सामूहिकता उनकी पहली शर्त होती है।

डॉ. बहादुर सिंह परमार

जन्म : 16 जुलाई, 1963, ग्राम रानीपुरा, छतरपुर।

प्रकाशन : अमरकांत का कथा साहित्य, बुंदेली लोक साहित्य, सृजन की सार्थकता, लोक साहित्य में मानव मूल्य, बुंदेलखंड में छंदबद्ध काव्य परंपरा आदि। बुंदेलखंड के इतिहास का बारह खंडों में संपादन।

संप्रति : बुंदेली बसंत पत्रिका के संपादक। बुंदेली लोक साहित्य, संस्कृति व इतिहास के क्षेत्र में कार्य।

संपर्क : मोबाइल– 7974217756

उत्सव में समूचा लोक एक विशेष कर्म से गतिशील होकर अद्भुत एकता की बानगी पेश करता है और यह एकता बाहर और भीतर दोनों तरफ से होती है। वास्तव में, लोकोत्सव लोकमन के मनोविज्ञान का जीता-जागता उदाहरण है। लोकोत्सव केवल उल्लास और आनंद की अभिव्यक्ति नहीं होते हैं, बल्कि ये लोक संस्कृति के संस्थान भी होते हैं। इनमें जहाँ एक ओर रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, रीति-रिवाज और चाल-ढाल के दर्शन होते हैं वहीं दूसरी ओर लोक आदर्श, लोक धर्म, लोक दर्शन तथा लोक संबंधों की शिक्षा भी प्राप्त होती है। लोक जीवन की सरिता सुख और दुख के दो किनारों के बीच निरंतर बहती रहती है। यह सही है कि लोकोत्सव सुख के तट पर उगे हरे-भरे वृक्ष हैं, जो अपनी जीवनी शक्ति सुख-दुख से बँधी लोक जीवन की जलराशि से ही ग्रहण करते रहते हैं।

बुंदेलखंड का लोक जीवन सुख और दुख को आत्मसात करता सहज रूप से अपनी भावनाओं को लोक पर्वों, त्योहारों के माध्यम से व्यक्त करता रहता है। लोक उत्सवों में पर्व, त्योहार तथा व्रत तीनों आत्मसात रहते हैं। इन तीनों के आंतरिक संबंधों से लोक उत्सव अपना रूप ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए, दीपावली को पर्व के रूप में देखें और इस अवसर पर लक्ष्मी पूजा को व्रत के रूप तथा दीपों का प्रकाश करना त्योहार है। इस सामूहिक अभिव्यक्ति से ही लोकोत्सव मनाया जाता है। लोकोत्सवों के अपने गीत होते हैं, अपनी कथाएँ होती हैं और मनाने का अपना एक खास तरीका होता है। बुंदेलखंड अंचल में वर्ष भर ऋतुओं के अनुसार अपने व्रत, त्योहार और पर्व हैं। उनसे संबंधित लोक गीत, लोक कथाएँ, लोक कलाएँ तथा लोक रस हैं जिनसे

लोकजीवन जीवन रस लेता रहता है। यहाँ पर उनके बारे में संक्षेप में बताया जा रहा है। जो लोक उत्सव बुंदेलखंड में लोक भावना को मुखरित करते हैं, वे अधोलिखित हैं–

1. जवारे : बुंदेलखंड अंचल में जवारों का पर्व शक्ति उपासना का पर्व है। चैत्र तथा क्वाँर माह में प्रतिपदा के दिन घरों में घटों को बीच से काटकर उसमें मिट्टी डालकर जवा बोए जाते हैं, तथा विधि-विधान से पूरे नौ दिन उनकी पूजा की जाती है। घटों में उगे जवारों को नवमी के दिन सामूहिक रूप से देवी के मंदिर में भजन गाते हुए ले जाया जाता है। जवारे जिसमें बोए जाते हैं, उसे 'खप्पर' कहते हैं। नवमी के दिन जवारे निकलते समय भक्त साँग लेकर चलते हैं। कई लोग देवी को प्रसन्न करने के लिए गाल के आर-पार या जीभ के आर-पार साँग को निकाल देते हैं। देवी के स्थान पर पहुँचकर 'जवारों' को जल में

विसर्जित किया जाता है। कुछ जवारे लौटते समय आपस में बाँटते हैं जिससे आपसी प्रेम व मेलजोल प्रकट होता है। छोटे लोग बड़ों के पैर छूकर जवारे देते हैं। जवारों के नौ दिनों में जो गीत गाए हैं, उन्हें 'देवी गीत' एवं 'अचरी' कहते हैं। इस अवसर पर गाए जाने वाले गीतों के कुछ बोल इस तरह से हैं–

1. दिन की ऊरन किरन की फूटन, सुरहिन बन को जाँय हो माँ।
   एक बन चलीं सुरहिन दो बन चलीं, तीसरे बन पोंची हो जाय माँ॥
2. तोरे दरस खों सब दल उमड़े, मड़िया के खोलो किबार हो माँ।

2. पजेंनूं पूनें : चैत्र मास की पूर्णिमा के दिन यह त्योहार मनाया जाता है। इसे पजेंनूं पूनें अर्थात 'पजन कुमार की पूनें' कहते हैं। कहीं-कहीं इसे 'चैती पूनें' के नाम से जाना जाता है। इस दिन माँ अपने पुत्र की दीर्घायु, सद्बुद्धि व बल प्रदान करने की कामना करती है तथा व्रत रखती है। आंगन में चौक पूरकर कोरी

मटकिया पर पोतनी पोतकर उस पर माँ व पजेंनूं की आकृति बनाई जाती है और उसमें शुद्ध घी, शक्कर, गुड़ तथा मेवे से बने लड्डू तथा अन्य पकवान जैसे–सेव, पपरियाँ व खुरमे आदि डालकर उसे पूजा जाता है। पूजन के बाद पुत्र मटकी से लड्डू निकालकर माँ की गोद में रखता है, माँ उन लड्डुओं को स्नेहपूर्वक अपने बेटे को खिलाती है। इस संबंध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है–"पजन के लड्डू पजनाई खाँय, दौड़-दौड़ मटकियन नौं जाँय।" पूजा में माता व पुत्र की प्रेम कहानी कही जाती है।

3. गनगौर : चैत्र महीना में शुक्ल पक्ष की तृतीया को गनगौर पर्व मनाया जाता है। इसमें सुहागिन स्त्रियाँ व्रत रखती हैं तथा गौर यानी पार्वती की पूजा करती हैं। गौर की मिट्टी की मूर्ति पूजी जाती है। गौर का संपूर्ण शृंगार कर उनसे अपने सुहाग की दीर्घायु की कामना की जाती है। इस दिन बेसन के विशेष पकवान बनते हैं जिन्हें 'गनगौरा' कहते हैं। यह गनगौरा आभूषण की तरह गौर को पहनाए जाते हैं। यही प्रसाद के रूप में वितरित होते हैं।

4. अकती : अक्षय तृतीया से आख तीज या अखतीत और अखतीज से अखती या अकती बना है। वैशाख शुक्ल की तृतीया को यह त्योहार होता है। इसमें चौक पूरकर चार घैला पानी से भरकर रखे जाते हैं और उन पर आम, गुड़, पकौड़ी, गुलगुला आदि रखा जाता है। हाथ से बनी पुतरियाँ भी चौक पूरकर उसमें रखी जाती हैं। क्वाँरी लड़कियाँ उनकी पूजा करती हैं, बाद में शाम को किसी बरगद (बरा) के वृक्ष के नीचे ले जाती हैं। वहाँ पुतरा-पुतरियाँ की भाँवरें बरा के फेरे लगाकर पड़ जाती हैं। इसके बाद डबुलियों में भिगोए देवलों (चने की दाल) को बाँटा जाता है। वहीं ननद, भौजी और सहेली चमेली या छेवला (पलाश) की बुदरिया लेकर एक-दूसरे से पति का नाम पूछती हैं। इस अवसर पर जो गीत गाया जाता है, वह है–

"अक्ती पूजन कैसें जाऊँरी, बरा तरें मेले लिवउबा,
मेले लिवउवा मोरे मेले लिवउवा, अक्ती पूजन कैसें जाऊँ की।"

अकती पर्व का बुंदेलखंड में किसानों के लिए भी बड़ा महत्व है। दिन के समय चार घैलों में पूजा के समय चने डाले जाते हैं। चारों घैलों को चार महीना आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद तथा आश्विन माना जाता है। जिन महीने के घैला के चने फूल जाते हैं माना जाता है कि उस महीने में अच्छी बरसात होगी, यदि चना नहीं फूलता तो सूखे की आशंका होती है। इसी दिन से खेतों की बखराई तथा रस्सी बनाने आदि का काम प्रारंभ हो जाता है।

5. बरा बरसात : ज्येष्ठ महीने की अमावस्या को बरा बरसात का त्योहार सुहागिन स्त्रियों के द्वारा मनाया जाता है। इस दिन सुहागिनें बरा (बरगद) के तने में सूत लपेटकर पूजा करती हैं। घर में आकर घड़े में पानी भरकर उसकी पूजा की जाती है। घर में कड़ी, चावल तथा फुलका आदि भोजन में बनाए जाते हैं। कृषि कार्य का भी प्रारंभ इसी दिन से हो जाता है।

6. कुनघुसू पूनें : आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को हर सास एक कमरे के चारों कोनों में चार पुतरियाँ हल्दी या गोबर से लिखती है या गोबर की बनाकर बैठाती है। फिर उनकी पूजा करने के बाद कहती है कि 'बहू जू घर की लक्ष्मी बनकर घर भरना।' या 'हे, गृहलक्ष्मी बहू तुम हमारे कुल की मान-मर्यादा को बनाए रखो और अपने गुणों से परिवार में सुख संपन्नता प्रदान करो। तुम्हारी संतान कुल का नाम उज्ज्वल करे।' इस पूजा की आधार कथा में भगवान शंकर व सती की कहानी है जिसमें सती अपने पति की बिना आज्ञा से पिता दक्ष प्रजापति द्वारा आयोजित यज्ञ में चली गईं, वहाँ उन्हें अपमानित होना पड़ा, जिससे उन्होंने आत्मदाह कर लिया।

7. कजरयाऊ नमें : श्रावण शुक्ल नवमी को स्त्रियाँ व्रत रखकर संध्या काल में दीवार पर गोबर या गेवरी से नौघरा वाली पुतरियाँ लिखती हैं। कहीं-कहीं नौ पुतरियाँ लिखी जाती हैं। उनका पूजन होता है। वास्तव में यह व्रत व पूजन नौ देवियों का ही है। उसी समय दोनों में गेहूँ या जौ बोकर किसी अँधेरे स्थान में रख दिए जाते हैं और उन्हें ढक दिया जाता है। इसी क्रिया से कजरियाँ लोकोत्सव का प्रारंभ होता है। इस अवसर पर देवियों को बिढ़ई का भोग लगाया जाता है। बिढ़ई देवल और उड़द की दाल की पिठी से भरकर बनाई गई रोटी होती है। भोग लगाने के बाद एक सेठ-सेठानी की कथा कही जाती है।

8. कजरियाँ या भुजरियाँ : महोबा में भाद्रपद कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को कजरियाँ या भुजरियाँ नदी या तालाब में विसर्जित की जाती हैं। ये कजरियाँ कजरयाऊ नमें को बोई जाती हैं। भुजरियों का महत्व महोबा में इसलिए अधिक है क्योंकि इसमें इतिहास जुड़ा है। चंदेल राजा परमाल की बेटी चंद्रावली हेतु पृथ्वीराज चौहान ने महोबा को श्रावण की पूर्णिमा को घेर लिया था, जब आल्हा-ऊदल वीर आए तो प्रथमा को चंद्रावली कजरियाँ विसर्जित करने जा सकीं। इसके पहले कीर्ति सागर पर आल्हा-ऊदल तथा पृथ्वीराज के मध्य भीषण रण हुआ था। पूरे बुंदेलखंड में श्रावण की पूर्णिमा को कजरियाँ जल में विसर्जित कर वितरित की जाती हैं।

9. मामुलिया : भाद्रपद की पूर्णिमा से आश्विन (क्वार) की अमावस्या तक बुंदेलखंड की किशोरियाँ मामुलिया खेलती हैं। इसमें कन्याएँ बेरी की काँटेदार शाख लेकर उसे विभिन्न प्रकार के पुष्पों से सजाकर और फल, मेवादि खोंसकर लहँगा तथा ओढ़नी से मानवीकृत कर देती हैं। इसके बाद गोबर से लिपे स्थान पर चौक पूरकर उसे प्रतिष्ठित करने के बाद हल्दी, चावल, पुष्प आदि से पूजती हैं तथा अठवाई, पंजीरी, हलुआ व फलों का भोग लगाती हैं। तब वे देवी सिद्ध हो जाती हैं। यह पूरा खेल एक उपासना हो जाता है। जब काँटेदार झकड़े को बालिकाएँ सजाती हैं तब गाती हैं—

मामुलिया मोरी, मामुलिया, कहाँ चलीं मामुलिया?
मामुलिया के आए लिबौआ,
झमक चली मोर मामुलिया,
जितै आजुल के बाग, उतै मोरी मामुलिया।

इस तरह मामुलिया को गाँव की प्रत्येक गली में घुमाया जाता है। बाद में पूजा करके गले मिलकर विदा किया जाता है। विदा के बाद उदास मन से उसे गाँव की नदी या तालाब में विसर्जित कर दिया जाता है। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त लिखते हैं कि "मामुलिया में नारीत्व की प्रतीकात्मकता तो है ही, साथ ही पुष्पों की कोमलता, सुंदरता और प्रफुल्लता, काँटों की प्रखरता-संघर्ष शीलता और वेदना, फलों की सृजनशीलता, उदारता और कल्याण की भावना भी निहित है।"

10. कार्तिक स्नान : बुंदेलखंड अंचल में कार्तिक व्रत अपनी अलग पहचान रखता है। पूरा अंचल इस समय कृष्णमय हो रंगमंच बन जाता है। गाँव-गाँव व गलियों-गलियों में कतकारियों के समूह गीत गाते हाथ में गाँठ बँधे लोटे लिए आपको मिल जाएँगे। इस व्रत के अंतर्गत स्नान, उपवास, पूजन, कथा, पोथी, रहस सब कुछ एक अनुष्ठान होता है। कतकारीं (व्रत करने वाली स्त्रियाँ) कार्तिक कृष्णपक्ष प्रतिपदा से पंचमी के बीच तक गाँठ बँधवाती हैं। इसके बाद

प्रतिदिन बड़ी भोर राधाकृष्ण के भावात्मक लोकगीत गाते हुए सरोवर, नदी के घाट पर स्नान करने जाती हैं। इस अवसर पर निम्न गीतों के स्वर सुनने को मिलते हैं—

1. आ जाऊँगी बड़ी भोर, दहीरा लेके,
2. भई न बिरज की मोर, सखी री मैं तो भई न बिरज की मोर
   कौन बन उड़ती रे, कौन बन चुनती, कौन वन करती किलोर

इसके साथ घाट पर नहाते समय कतकारियों द्वारा निम्न गीत गाया जाता है—

दै देव चीर हमारे कन्हैया, प्यारे दै देव चीर हमारे।

11. बुड़की : बुंदेलखंड अंचल में बुड़की बहुत ही उत्साहपूर्वक मनाया जाने वाला उत्सव है। जब सूर्य मकर राशि में संक्रमित करता है, तो बुड़की होती है। इसे परिनिष्ठित भाषा में 'मकर संक्रांति' कहा जाता है। यह कभी पूस, कभी माघ महीने में आती है, अंग्रेजी कलेंडर से अधिकांशतः 14 जनवरी को ही बुड़की होती है। इस दिन पानी में बूड़कर (डूबकर) नहाया जाता है जिससे इसे 'बुड़की' कहते हैं। गाँव के समस्त स्त्री-पुरुष-बच्चे परबी के समय (बुड़की के मुहूर्त) किसी

जल स्रोत नदी, तालाब या कुंड आदि पर समूह बनाकर नहाने जाते हैं, तब लमटेरा (रमटेरा) गाते हैं जिनके कुछ बोल निम्न हैं—

1. दरस की तौ बेरा भई, पट खोलौ छबीले भोलानाथ
   दरस की तौ बेरा भई...।
2. निकर चलौ रे दै कें टटिया, कौन माया में भूले तोरे प्रान
   निकर चलौ रे दैकें टटिया...।

नदी आदि में स्नान के पूर्व तिल पीसकर शरीर में मला जाता है, फिर नहाया जाता है। नहाने के बाद खिचड़ी तथा तिल का दान किया जाता है तथा तिल-गुड़ के लड्डू एवं घुल्ला (खाँड़ से बने) खाए जाते हैं। इस त्योहार पर प्रत्येक परिवार में विविध प्रकार के पकवान बनाए जाते हैं, जिनमें लड़ुआ, सेव, खुरमा, गुझिया, खुरमी, पपरियाँ आदि होते हैं जिन्हें बुड़की के स्थान पर खाया जाता है। पूरे बुंदेलखंड में जगह-जगह मेले लगते हैं।

12. होरी (फाग) : होरी का पर्व मस्ती व प्रसन्नता का पर्व है। इसे फाग के नाम से भी जाना जाता है। बसंत के आगमन से फाल्गुन की पूर्णिमा तक मस्ती के आलम में पूरा बुंदेलखंड अंचल डूबा रहता है। होलिका दहन फाल्गुन की पूर्णिमा को किया जाता है। इसके पहले

गाँव के बाहर (ग्योंड़े में) होली का डाँड़ा (लकड़ी) गाड़ा जाता है, वहाँ सब लोग मिलकर होली इकट्ठी करते हैं। इसके पहले घरों में गोबर के बरूला बनाए जाते हैं। इन बरूलों के साथ चंदा-सूरज व ढाल-तलवार भी बनाए जाते हैं। गाँव की सामूहिक होली दहन से लाई आग से घर में बरूलों की होली जलाई जाती है। इनमें नवान्न (गेहूँ की बालियों) को भूना जाता है। अगले दिन रंग तथा गुलाल की फाग आपस में खेली जाती है। गाँव-गाँव में मंडलियाँ फाग गाती हैं। यह उत्सव रंगपंचमी तक चलता है। इस अवसर पर गाए जाने वाली फागों की अपनी एक समृद्ध परंपरा बुंदेलखंड में है। ईसुरी, ख्यालीराम, गंगाधर जैसे अनेक लोक कवियों ने चौकड़ियाँ खड़ी फागें, छंदयाऊ फागें लिखकर लोक अभिव्यक्ति को स्वर प्रदान किया है। इस अवसर पर श्रृंगार तथा भक्तिपरक गायन होता है। भक्तिपरक फागें मंदिरों में गाई जाती हैं। नायिका नेत्रों पर लोक प्रचलित एक छंद देखिए—

अँखियाँ पिस्तौलें सी भरकें, मारत जात समर कें।
गोली लाज दरद की दारू, गजकर देत नजर कें।
देत लगाय सेंन की सूजन, पल की टोपी धर कें।
ईसुर फैर होत फुरती में, कोऊ कहाँ लों बरकें।

अन्य पर्व : उक्त तीज-त्योहारों के अतिरिक्त बुंदेलखंड में दिवारी (दीवाली), नौरता (नवरात्रि), दसरओ (दशहरा), आसमाई, सिड़ौरा, हरियाली अमावस, नागपंचमी, हरछठ, संतान सातें, तीजा, महालक्ष्मी तथा इच्छा नवमी जैसे त्योहार भी उल्लास के साथ मनाए जाते हैं। बसंत पंचमी तथा महाशिवरात्रि पर अनेक शिव मंदिरों के स्थलों पर मेलों का आयोजन होता है। ये लोक पर्व लोक उत्सवी भाव भूमि से लोक रंजन के साथ लोक शिक्षण के माध्यम भी हैं जिनमें लोक संस्कृति की परंपरा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते हैं।

मराठी भाषा से जुड़ी हुई पत्रिका और पुस्तकें

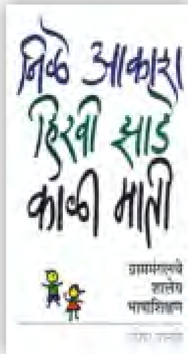

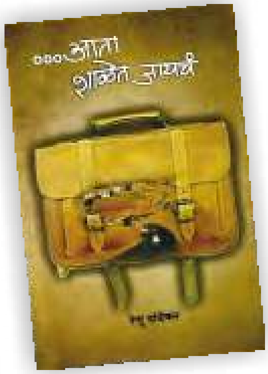

कहानी-उपन्यास पढ़ने में जितनी रुचि है उससे ज्यादा रुचि मुझे आत्मकथा और शिक्षा से जुड़ी पत्रिका-पुस्तकें पढ़ने में है। इसका कारण मेरा शिक्षा विभाग में काम करना हो सकता है। सन् 2000 में स्वेच्छा निवृत्ति लेने के बाद शिक्षा संबंधी स्तंभ लिखने का मौका स्थानिक समाचार पत्रों में मिला। फलतः शिक्षा संबंधी पत्रिका व पुस्तकें पढ़ने का अभ्यास उपयोगी साबित हुआ।

मराठी भाषा के साथ मैं हिंदी-अंग्रेजी समाचार पत्र-पत्रिका ग्रंथालय में जाकर पढ़ता था। अब मैं मराठी भाषा में शिक्षा से जुड़ी पत्रिका और पुस्तकों की चर्चा आगे करना चाहता हूँ। मराठी भाषा में शिक्षा से जुड़ी हुई पत्रिका की अखंडित प्रक्रिया चालू है।

नूतन बाल शिक्षा संघ की मासिक पत्रिका 'शिक्षण पत्रिका' 1933 से प्रकाशित की जा रही है। यह बाल शिक्षा में काम करने वाले कार्यकर्ता और अध्यापकों के लिए महत्वपूर्ण पत्रिका है। 'बाल शिक्षा के गांधी' नाम से परिचित शिक्षाशास्त्री गिजूभाई बधेका जी ने इसे गुजराती में 1926 में प्रारंभ किया। उनके साथ काम करने वाली उनकी सहकारी ताराबाई मोडक ने इसे मराठी में शुरू किया। दूसरी महत्वपूर्ण पत्रिका है 'शिक्षण समीक्षा'। यह द्वैमासिक पत्रिका डॉ. म. बा. कुंडलेजी ने अपने सहकारी मित्रों के साथ 52 वर्ष पहले शुरू की थी। आज यह पत्रिका भारतीय शिक्षा मंडल के तरफ से संचालित होती है।

मुंबई से 'भारतीय शिक्षण' मासिक पत्रिका भारतीय शिक्षा मंडल प्रकाशित करती है, हिंदी और अंग्रेजी भाषा में महाराष्ट्र सरकार राज्य शैक्षणिक अनुसंधान से और प्रशिक्षण परिषद की ओर से 'जीवन शिक्षण' मासिक पत्रिका प्रकाशित करती है।

महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा मंडल मासिक पत्रिका 'शिक्षण संक्रमण' प्रकाशित करती है। यह पत्रिका माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा से जुड़े सभी अध्यापक, प्रधान अध्यापक, संस्थाकारों के लिए मार्गदर्शन करती है। बाल शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाली संस्था 'ग्राममंगल' 2007 से 'शिक्षण वेध' पत्रिका निकालती है। आज के जाने-माने शिक्षाशास्त्री प्रो. रमेश पानसे इसके संपादक हैं। 2018 से यह पत्रिका ई-पत्रिका के रूप में प्रकाशित हो रही है।

भारत के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री जे.पी. नाईक (जो 1964 में गठित कोठारी शिक्षा आयोग के सदस्य सचिव थे) और उनकी सहचरणी चित्राताई नाईक ने 'इंडियन इंस्टीट्यूशन ऑफ एजुकेशन' की पूना में स्थापना की थी। आज इस संस्था से त्रैमासिक पत्रिका 'शिक्षण आणि समाज' का

कालिदास बालकृष्ण मराठे

जन्म : 02 जनवरी, 1944, पाली, गोवा।

शिक्षा : एम.ए., एम.ए. बांगला पदविका।

लेखन : 1966 से विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिका में नियमित लेखन।

प्रकाशन : शिक्षा से संबंधित पाँच पुस्तकें मराठी भाषा में।

संपर्क : मोबाइल– 9423882290

ई-मेल– kalidas1944@gmail.com

प्रकाशन किया जा रहा है। यह पत्रिका प्रौढ़ शिक्षण और प्राथमिक शिक्षा के काम करने वाले कार्यकर्ताओं के लिए बहुत उपयुक्त है। महाराष्ट्र राज्य प्रधान अध्यापक संस्था 'महाराष्ट्र एजुकेशन जर्नल' नाम की मासिक पत्रिका प्रकाशित करती है। पालकनीती परिवार, पूना से 'शैक्षणिक संदर्भ' मासिक पत्रिका प्रकाशित होती है।

बच्चों के माँ-बाप यानी अभिभावकों के लिए भी मराठी भाषा में बहुत-सी पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। सबसे पुरानी पत्रिका 'पालक शिक्षक' थी।

मराठी भाषा में शिक्षा से जुड़ी पुस्तक लेखन परंपरा समृद्ध एवं बहुमुखी है। श्रीमान वासुदेव बी. पटवर्धन की 'शिक्षण, शिक्षक व अभ्यासक्रम' स्वातंत्र्यपूर्व काल की बहुचर्चित पुस्तक है। उसी काल में लोकमान्य तिलक, विष्णुशास्त्री चिपलूणकर, गोपाल गणेश आगरकर, गोपाल कृष्ण गोखले, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जैसे महान नेताओं के समाचार पत्रों में शिक्षा के बारे में लिखे निबंध महत्वपूर्ण हैं। अंग्रेजी भाषा से अनूदित पुस्तकों की संख्या भी लक्षणीय है। मराठी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई हैं।

आज मराठी भाषा में एक से ज्यादा पुस्तकें लिखने वाले शिक्षावीर हैं—प्राचार्य लीला पाटिल, प्रो. रमेश पानसे, श्री हेरंब कुलकर्णी, सुश्री रेणू दांडेकर। प्राचार्य लीला पाटिल ने सेवानिवृत्ति लेने के बाद 'सृजन आनंद विद्यालय' की स्थापना की। उस प्रशाला के अनुभव पर लिखी पुस्तक 'प्रवास ध्यासाचा, आनंद सृजनाचा' महत्वपूर्ण पुस्तक है। 'शिक्षणातील ओयॅसिस', 'ऐलमा पैलमा शिक्षणरेखा', 'परिवर्तनशील शिक्षण', 'शिक्षण देता घेता', 'सृजन आनंद शिक्षण' पुस्तकें भी शिक्षा क्षेत्र में जनप्रिय हैं।

प्रो. रमेश पानसे, जिन्होंने अर्थशास्त्र पढ़ाने का काम छोड़कर श्रीमती अनुताई वाघ के साथ बाल शिक्षा का काम शुरू किया। ग्राममंगल संस्था स्थापित करके बाल शिक्षा में जो काम किया, उसके लिए उन्हें अनेक पुरस्कार मिले। भाष्य अध्यापन के उनके प्रयोग पर आधारित पुस्तक 'निळे आकाश हिरवी झाडे, काळी माती' बहुत प्रसिद्ध है। उनकी पुस्तक 'कर्ता करविता' भी उतनी ही जनप्रिय है। अन्य पुस्तकें इस प्रकार हैं—रचनावादी शिक्षण, बालशिक्षण स्वरूप व नवी दिशा, नयी तालीम, नूतन बालशिक्षण संघाचा वैचारिक इतिहास, शोध घेते ते शिक्षण, शिक्षण-आनंद क्षण, भाष्यग्रहण व भाषा शिक्षण।

सुश्री रेणू दांडेकर जिन्होंने रत्नागिरी जिले के गाँव चिखल गाँव में लोकमान्य तिलक विद्यापीठ की स्थापना की। इसलिए उन्होंने महाविद्यालय के प्राध्यापक पद को त्याग दिया। बच्चों के शैक्षिक विकास के साथ शारीरिक, मानसिक और मन के चतुर्मुखी विकास के लिए अनेक प्रयोग किए। उस अनुभव के आधार पर उन्होंने पुस्तकें लिखीं जिसमें शिकू आनंदे, बालकेंद्री शिक्षण, आता शाळेत जायचं, आमचे शालेय प्रकल्प निर्मितीच आकाश, खेळातून भाषा विकास जैसी पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं।

अहमदनगर के अकोले गाँव के अध्यापक श्री हेरंब कुलकर्णी जिन्हें महाराष्ट्र के प्रतिनिधि के नाते पहले के 'योजना सहयोग' में काम करने का मौका मिला। श्री कुलकर्णी ने अपना पहला लेख महाराष्ट्र राज्य में गुणवत्ता सूची में पहले आए 50 विद्यार्थियों के साक्षात्कार लेकर लिखा था। इन सब विद्यार्थियों ने भविष्य में जाकर इंजीनियर, डॉक्टर बनने का ध्येय बताया था। 10-15 विद्यार्थियों के माता-पिता शिक्षक थे। लेकिन एक ने भी भविष्य में शिक्षक होकर देश की सेवा करूँगा, ऐसा नहीं कहा। उनका यह लेख पूरे राज्य में बहुचर्चित रहा। इससे प्रेरणा लेकर इन्होंने 'शाळा आहे शिक्षण नाही', 'परिक्षेला पर्याय काय?', 'माझी शिक्षण प्रक्रिया' जैसी पुस्तकें लिखीं, जो आज बहुचर्चित हैं।

अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं—'बालशिक्षण गाथा', श्रीमती रजनी दाते; 'शिक्षणाच्या उगमापाशी', सुचित्रा पडळकर; 'सुसंस्कृत शिक्षण', मुग्धा देशपांडे; 'गोष्ट एका शाळेची', अलका वैद्य; शुभदा जोशी संपादित 'आनंदाने शिकविण्याच्या दिशेने'; 'शिक्षण यात्रा', डॉ. लता काटदरे; 'मूल शिकतं कस?', शिवराज गोर्ले; 'एकविसाव्या शतकातील समग्र शिक्षण', सुनील कुमार लवटे; 'शिकण्यायोग्य काय आहे', कृष्ण कुमार। अनूदित पुस्तकें—'हसत-खेळत बालसंगोपन', मंजुषा आमडेकर; 'तोत्तोचान', चेतना सरदेशमुख; 'बालवाडी कशी असावी', अनुताई वाघ; 'गोष्टी सांगण्यासाठी चार गोष्टी', ताराबाई मोडक; 'सहज शिक्षणाची प्रयोगशाळा', विनोदिनी काळगे।

बच्चों के माँ-बाप-अभिभावक के लिए भी बहुत-सी पुस्तकें (200) मराठी भाषा में लिखी गई हैं। ये पुस्तकें हैं—1. शिवराज गोर्ले, सुजाण पालकत्व; 2. शोभा भागवत, सारं काही मुलांसाठी; 3. राजीव तांबे, छोटी-सी बात; 4. डॉ. हेमंत जोशी, मस्त वाढवू या मुले; 5. डॉ. मालती कारवारकर, ब्रेन टॉनिक; 6. डॉ. ह.वि. सरदेसाई, घरोघरी ज्ञानेश्वर जन्मती; 7. अरुणा बुरटे, संगोपन कोजागिरीचे; 8. शिवराज गोर्ले, मूल शिकतं कसं; 9. डॉ. लता काटदरे, आनंदयात्रा संगोपनाची; 10. मंजुषा आमडेकर, हसत-खेळत बालसंगोपन; 11. ताराबाई मोडक, पालकांसाठी तीन पुस्तकें।

सभी भारतीय भाषाओं में शिक्षा से जुड़ी पुस्तकों का प्रकाशन निरंतर किया जा रहा है। उन पुस्तकों में कुछ ऐसी पुस्तकें होंगी, जिनका अनुवाद भारतीय भाषाओं में होने की जरूरत है। इस बारे में मेरा सुझाव है कि सर्वोच्च शिक्षण संस्था राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) में एक विभाग होना चाहिए जो भारतीय भाषाओं में शिक्षा से जुड़ी पुस्तकों की सूची बनाए और राज्यों के शिक्षा से जुड़ी पुस्तकों का लेखन करने वाले (चुने हुए) लेखकों की समिति का गठन कर हर वर्ष कौन-सी पुस्तकें भारतीय भाषाओं में अनूदित करने योग्य हैं, उनका चयन करे। साहित्य अकादेमी, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत जिस तरह सभी भारतीय भाषाओं में पुरस्कार प्राप्त पुस्तकों का अनुवाद करता है वैसा ही काम एन.सी.ई.आर.टी. को करना चाहिए।

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृतम्	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
रोग	**रोगः**	**बिमारी, रोग**	**बीमारी**	**ब्यमॉर्य**	**रोगु, बीमारी**	**रोग**	**रोग**	**रोग**	**रोग**	**रोग**
कुष्ठ (कोढ़)	कुष्ठः	कोढ़, कोड़्ह	जुज़ाम	म्योंद	कोढु	कोड, महारोग	रक्तपिती	कोढ़, कुष्ठ रोग	कुष्ठ, कोर, महारोग	कुष्ठ, महाब्याधि
कैंसर	कर्कटः	कैनसर	कैन्सर, सरतान	कन्सर	कैंसरु	कर्क	कॅन्सर, कोक्र	केन्सर	क्यान्सर, कर्कटरोग, अर्बुद	बयानसार, कर्कट रोग
खाँसी	कासः	खंघ, खांसी	खाँसी	च़ास	खंघि	खोकला	खांक	खांसी, उधरस	खोकी	काशि, कासि
चेचक	मसूरिका	माता, चेचक	चेचक	शुतल्य	माता, वड॒ी माता	देवी	देवी, असूक	बळिया, माता	बिफर	बसंत
ज्वर	ज्वरः	बुख़ार	बुख़ार	तफ	बुख़ार	ताप	जोर	ज्वर, ताव	जरो	ज्वर
टेटनस	धनुर्वातः	टैटनस	टेटनस	टेटनस	टेटनसु	धनुर्वात	धनुर्वात, धणकुटी	धनुर, धनुर्वा	धनुषटङ्कार	धनुषटंकार
तपेदिक (यक्ष्मा)	यक्ष्मन्	तपदिक्क	तपेदिक़	सिल	तपेदिक, सिल्ह	क्षय	क्षयरोग	क्षयरोग	क्षयरोग, सुकेनास	यक्ष्मा, क्षयरोग
प्लेग	मूषिकरोगः	पलेग	ताऊन (प्लेग)	तोवून	प्लेगु	प्लेग	महामारी, प्लेग	प्लेग	महामारी, प्लेग	प्लेग
पीलिया	पाण्डुरोगः	पीलीआ	यरक़ान	कांबल	कामीणु, कामिणु	कावीळ	कामीण	कमळो, कमळी	कमलपित्त, कामुला	पाण्डुरोग, कोमला रोग
मधुमेह	मधुमेहः	शक्कर रोग, ज़िआबतीस	ज़ियाबीतिस	शक्कर, डायबिटीज़	मिठा पेशाब	मधुमेह	गोडेमूत	मधुमेह, मधुप्रमेह	मधुमेह, मधुप्रमेह	मधुमेह, बहुमूत्र रोग
मलेरिया	मशकज्वरः	मलेरिया	मलेरिया	मलेरिया	मलेरिया	हींवताप	मलेरिया, कुडकुड्याचो जोर	टाढियो ताव, मेलेरिया	औलो, मलेरिया	म्यालेरिया
रतौंधी	रात्र्यन्धता	अंधराता	शबकोरी (रतोंधी)	ॲछ दोद, रॉच़ हुंद अन्यर	राति अंधाई	रातांधळेपण	रातांधळ	रतांधळो, रतांधळापणुं	रतन्धो	रातकाना

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
रोग, असुख बेमार	**लाइना**	**रोग**	**जब्बु**	**नोय्**	**रोगम्**	**कायिले, रोग**	**बमारी, रोग**	**आजार**	**रोग, व्याधि**	**बेराम, लोमजानाय**
कुष्ठ	कुस्ती लाइथुङ्	कुष्ठ	कुष्ठु	तोळु नोय्	कुष्ठम्	कुष्ठ	कोढ़	मुडुक् आजार रगा	कुष्ठ (कोढ़)	खुरिया बेराम
केन्सार, कर्कट रोग	कैन्सर	क्यान्सर, कर्कट रोग	कैन्सरु	पुट्टु नोय्	कान्सर्	क्यान्सर, अर्बुद	कैंसर	कैनसार	कैंसर, कर्करोग	खेन्सार बेराम
काह	लोक खुबा	काश	दग्गु	इरुमल्	चुम, कुर	केम्मु	खंघ, खांसी	खुः/खोः	उकासी, खोंखी	गुजुनाय
बसंत रोग	लाइकूप थोकपा	बसंत	मशूचि	वैसूरि, पेरिय अम्मै	वसूरि	सिडुबु, मैलीबेने, अम्मा	माता, चेचक	बसंत	कोदबा	लोन्थि गेदेर, आइ, बसन्थ, बिमा
ज्वर, जर	अरुम लाइहौ	ज्वर	ज्वरमु	जुरम्, काय्च्चल्	ज्वरम्, पनि	ज्वर	बखार, ताप	रूवा	बोखार, जर, ज्वर	लोमजानाय, बेराम जानाय
धनुष्टंकार	तितानस	धनुष्टंकार	टिटानस	दनुर् वायु	टेटनस्	टेटनस, धनुर्वायु	टैटनस, चाननी	टिटनेस	धनुष्टंकार	बोरला बेराम, तितेनास
यक्ष्मा, क्षयरोग	टी.बी.	राजजख्मा, ख्ययरोग	क्षय रोगमु	कास रोगम्	क्षयम्, राजयक्ष्मावुॅ	क्षय	निक्का बखार, ताप, तपेदिक	जखा, राज आजार	तपेदिक, क्षयरोग	थै गोबानाय बेराम, जखखा बेराम
प्लेग	प्लेग	प्लेग	प्लेगु	कोळळै नोय्	प्लेग	प्लेगु	प्लेग	पेलेग	प्लेग	फ्लेग, एन्जरनिफ्राय जानाय बेराम
कमला बेमार, पाण्डुरोग	जोनतिस, नापू कारकपा लैना	कालांमल रोग, पांडु रोग	पसिरीकलु	मजळ् कामालै	मञ्ञप्पित्तम्	कामाले, कामणि	जरकान, पीलिया	जनडीस	पांडु रोग, कामला	फुर्साब जालांनाय, आमाय जानाय
मधुमेह, बहुमूत्र	ईशिङ् पुकचत्पा डाइवेटिज	बहुमुत्र रोग, डाइबेटिस	मधुमेहमु	नीरिऴिवु/ सक्करै वियादि	मधुमेहम्	सिहिमूत्र, सक्करे रोग मधुमेह	मधुमेह्	हेड़म आजार	मधुमेह, प्रमेय	खर खर, हासुनाय, सिनि बेराम
मेलेरिया	मेलेरिया	मेलेरिया	मलेरिया	कुळिर् जुरम्	मलंपनि, मलेरिय	चळि ज्वर, मलेरिया	मलेरिया	मेलेरिया	शीतज्वर	मेलेरिया
कुकुरी कणा रोग	नुमिदाङ् मित उदबा लाइना	अंधारकणा (अंधार-कणा)	रेजीकटि	मालैक्कण् वियादि	मालक्कण्णुॅ	इरुळुगण्णु, रात्रिकुरुडु	नराहूता	रात कॉंड़ा	रतौन्ही	खोमसि खाना, हर खाना

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

बाल साहित्य के सेवक निरंकार देव

सच में अगर देखा जाए तो बच्चों का साहित्य न केवल बच्चों को बल्कि बड़े लोगों के मन को भी छू जाता है, अगर वो लिखा हो निरंकार देव सेवक जी ने। हमारे देश के अग्रणी बाल साहित्यकार निरंकार देव सेवक जी का जन्म बरेली में हुआ और अपने बाल साहित्य से देश-दुनिया में न सिर्फ अपना, बल्कि अपने शहर का नाम भी रोशन किया। अपने उत्कृष्ट कार्य से यानी बाल साहित्य रचकर देश, समाज और बरेलीवासियों को प्रेरणादायक संदेश भी दिया है।

सीमा 'असीम' सक्सेना

शिक्षाः एम.ए. संस्कृत।

संप्रति : उद्घोषक, आकाशवाणी।

प्रकाशन : चार पुस्तकें प्रकाशित; दो काव्य संग्रह 'ये मेरा आसमाँ' व 'सागर मीठा होना चाहता है'; दो कहानी संग्रह 'लिव लाइफ' व 'आखिर कब तक'। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन।

पुरस्कार : सारस्वत सम्मान, विशिष्ट सरस्वती रत्न सम्मान, विश्व हिंदी संस्थान, 'कल्चरल ऑर्गेनाइजेशन कनाडा से सम्मान' व ऑल इंडिया कल्चरल ऐसोसिएशन द्वारा इंटरनेशनल थिएटर फेस्टिवल में प्रतिभाशाली कलाकार का सम्मान।

संपर्क : मोबाइल– 9458606469

ई-मेल– seema4094@gmail.com

एक रचना देखिए–

एक शहर है टिंबक टू
लोग वहाँ के हैं बुद्धू
बिना बात के ही ही ही
बिना बात के हू हू हू!!

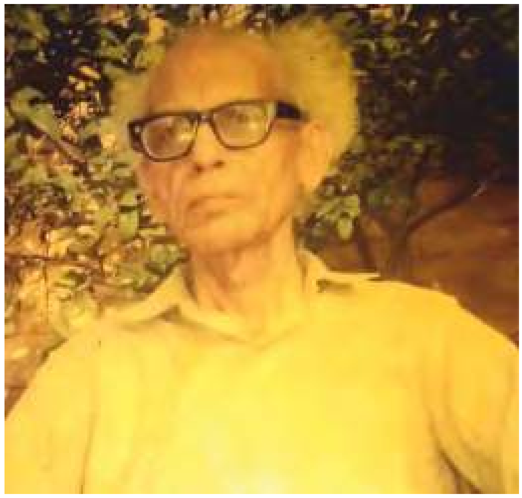

बरेली शहर के मूर्धन्य बाल साहित्यकार और पत्रकार सेवक जी सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् का सहज प्रतीक यानी कि बेहद सरल थे। बच्चों के प्रति उनका अत्यंत स्नेह का भाव तथा लेखन के प्रति चिंतन, मनन और एकाग्रता ही उनके जीवन का एक मात्र अंग थी। सेवक जी ने हिंदी बाल साहित्य के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया था। अपनी गहन सोच से दिन-रात मनन करते हुए उन्होंने बच्चों के लिए कविता, कहानी, गीत रचते हुए शिशु साहित्य तथा हिंदी बाल साहित्य का एक विशालतम साम्राज्य रचकर खड़ा कर दिया था। साथ ही समीक्षा और समालोचनाओं से साहित्य का एक मार्ग सेवक जी ने बनाया इसी वजह से आज उनकी पहचान बाल साहित्य में पितामह की तरह बन गई है। सेवक जी का कहना था कि बच्चों को बेकार का ज्ञान मत दो, बल्कि उनके साथ खेलो, उनके साथ बातें करो, और हँसी-ठिठोली करो। वे बच्चों के साथ खेलते, बातें करते हुए बाल मन के चितेरे से बन गए थे इसीलिए उनका कहना था कि बाल साहित्य रचने से पहले बच्चों के मन को पढ़ो।

रचनाएँ

उनकी रचनाएँ हर मन को छूने वाली बहुत सरल भाषा-शैली में लिखी गई हैं। निरंकार देव सेवक जी की कुछ चुनिंदा रचनाएँ हैं–बचपन एक समंदर, अगर-मगर, दूध जलेबी, धूप-छाया, चाचा नेहरू के गीत, रिमझिम, फूलों के गीत, चिड़िया रानी, टेसू के गीत, चिनगारी, हिंदी बाल गीत साहित्य, आजादी के गीत, पप्पू के बाल गीत, शेखर के बाल गीत, मुन्ना के बाल गीत, मटर के दाने, माखन मिश्री। उन्होंने करीब 55 कविता संग्रह लिखे थे। इसमें दो संग्रह अपने बेटे के नाम से लिखे थे। हिंदी बाल साहित्य के वरिष्ठ कवियों में बाल साहित्यकार निरंकार देव सेवक जी का नाम सबसे ऊपर आता है। सेवक जी ने बाल कविताएँ और शिशुगीत लिखने के साथ ही हिंदी बाल कविता को दिशा देने का बहुत बड़ा काम किया, उनके द्वारा लिखे गए शिशु गीत हिंदी बाल साहित्य में आदर्श शिशु गीत माने जाते

हैं। बच्चों को उनके लिखे हुए शिशुगीत आज भी बहुत पसंद हैं, उन्होंने एक शिशुगीत लिखा था—

एक शहर है चिकमंगलूर
यहाँ बहुत से हैं लंगूर
एक बार जब मियाँ गफूर
खाने गए वहाँ अंगूर
बिल्ली एक निकल आई
वह तो थी उनकी ताई
कान पकड़कर पटकी दी
जय जय हो बिल्ली माई!!

एकदम सरल-सहज भाषा में लिखी गई उनकी यह रचना जिसमें एक राजनैतिक व्यंग्य भी छिपा हुआ है, हर मन को छू लेती है। इसी तरह से उनकी प्रत्येक रचनाएँ हैं।

एक रचना देखिए—

चाचा नेहरू ने पाले
दो बच्चे शेर के
रोज सवेरे उठते हैं
सोकर देर से।।

उनके सरल व्यक्तित्व की छाप उनके साहित्य पर भी नजर आती है। उनका सीधी सरल भाषा में लिखना ही सीधे बच्चों के मन में उतार जाना था।

सम्मान

सेवक जी के बाल साहित्य पर कुछ विश्वविद्यालयों में छात्रों ने शोध भी किया है। सबसे बड़ी बात है कि सेवक जी बरेली के एकमात्र ऐसे बाल साहित्यकार हैं जिनके नाम से उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान प्रतिवर्ष एक बाल साहित्यकार को सम्मानित करता है। जब वह बी.ए. में पढ़ रहे थे तभी उनकी एक कविता किसी प्रतियोगिता में पुरस्कृत हुई थी फिर यह पुरस्कार मिलने का सिलसिला लगातार चलता ही रहा, लगभग 22 बार विभिन्न संस्थानों द्वारा सेवक जी को सम्मानित किया गया। 1952 में रिमझिम पुस्तक के लिए सेवक जी को रीवा राज्य

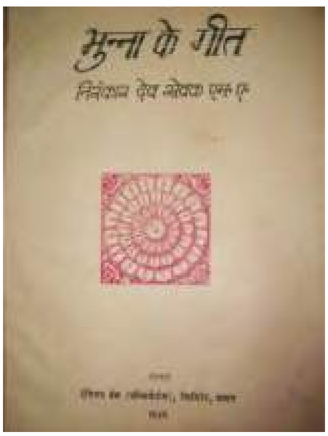

द्वारा सम्मानित किया गया। नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च ट्रेनिंग सेंटर, भारत सरकार ने सेवक जी के नन्हे-मुन्ने गीत संकलन को पुरस्कृत किया। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने 1980 में बाल साहित्य पर विशेष सेवाओं के लिए पुरस्कृत किया।

उनके द्वारा लिखे हुए एक आलेख को डॉ. हरिकृष्ण देवसरे ने अपने शोध प्रबंध में बच्चों के साहित्य पर प्रथम आलोचनात्मक प्रबंध माना। प्रगतिशील कविताओं में उनकी पुस्तक 'चिनगारी' कालजयी रचना मानी जाती है। निरंकार देव सेवक जी ने सिर्फ बाल साहित्य ही नहीं लिखा, बल्कि गजल आदि भी लिखी हैं। शायद यह बात अधिकतर लोगों को पता न हो। एक रचनाकार जो हर विधा में लिख सकता है, लेकिन उसे पहचान सिर्फ उसी रचना से मिलती है जो वह अपने दिल से लिखता है जैसे कि सेवक जी को बाल साहित्य से मिली।

जन्म स्थान

निरंकार देव सेवक जी का जन्म 18 जनवरी, 1919 को बरेली के सईदपुरिया मोहल्ले में हुआ था। अतः उनका शताब्दी वर्ष मनाने के लिए बरेली में कुछ विशेष करना था। हालाँकि समय-समय पर उनके जन्मदिन पर कुछ-न-कुछ आयोजन बरेली व देश में होते रहते हैं। दो बरस पहले यानी कि 2018 में बरेली कॉलेज के सभागार में बालमन के चितेरे निरंकार देव सेवक जी का जन्मशताब्दी वर्ष का समारोह मनाया गया था जिसमें बरेली शहर के प्रशासन ने हर जिम्मेदारी को अपने ऊपर लेकर सब काम किया था, जैसे कि उनके घर का रंग-रोगन कराना हो या उनकी पांडुलिपियों को प्रकाशित कराना हो, सभी कुछ प्रशासन ने ही किया। इस जन्मशताब्दी वर्ष के कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में बरेली के जिलाधिकारी को भी बुलाया गया था। उन्होंने कहा कि बरेली में साहित्यिक माहौल है, बरेली की जनता साहित्य प्रेमी है और साहित्य की गरिमा को अच्छे से समझती है। यहाँ पर बड़े बाल साहित्यकार निरंकार देव सेवक जी का निवास स्थान था, अतः निरंकार देव सेवक जी बरेली की धरोहर हैं। हमें उनका जन्मशताब्दी वर्ष मनाने का मौका मिला, इसके लिए हम बेहद गौरवान्वित हो रहे हैं।

रोचक प्रसंग

निरंकार देव सेवक जी की पुत्रवधू पूनम जी से एक बार मुलाकात हुई तो उन्होंने उनके बारे में बहुत सारी बातें बताईं जैसे कि पापा जी को बच्चों से बेहद प्यार था। मुझे अपनी बेटी जैसा स्नेह देते थे। अधिकतर लोग यही समझते थे कि मैं उनकी बहू नहीं, बेटी हूँ। अपने नाती-पोतों के अलावा वे आस-पास के बच्चों को भी बहुत प्रेम करते थे और उनका यह स्नेह दिल से होता था जिसमें दिखावा नहीं था।

वे अकसर बच्चों या फिर अखबारों से घिरे रहते थे। हाँ, उनको अखबार पढ़ने का बहुत शौक था। हिंदी-अंग्रेजी के करीब आठ-दस अखबार प्रतिदिन आते थे और वे उनको पूरे दिन पढ़ते रहते थे या फिर कुछ-न-कुछ लिखते रहते थे जिस वजह से जीवन के अंतिम दिनों में उनको दिखना बंद हो गया था फिर मैं एक बहू होकर भी उनका हर तरह से ख़याल रखती थी, जैसे किसी बच्चे को पालते हैं ठीक वैसे ही। जीवन के अंतिम दिनों में मुझे उनकी देखभाल करनी पड़ी थी क्योंकि

मम्मी जी यानी मेरी सासु माँ इस दुनिया में नहीं रही थीं। यह कहते हुए उनकी आँखें नम हो गईं।

कुछ और बताइए उनके बारे में, उनसे आग्रह किया तो वे एक बहुत प्यारा वाक्या बताते हुए जोर से हँस पड़ीं कि जब मेरी शादी होकर आई तब एक दिन मम्मी जी बोलीं कि पापा को खाना दे आओ। मम्मी जी ने बताया खाने की थाली में मीठा दही जरूर रख लेना। मैंने कहा ठीक है और थाली में सब्जी, रोटी और दही रखकर उनको दे आई। बस थाली देकर आई ही थी कि पापा जी ने मम्मी को आवाज लगाते हुए कहा कि क्या घर में चीनी नहीं बची है?

मम्मी फौरन मुझसे बोलीं, बहू क्या तुमने दही में चीनी नहीं डाली? हाँ, डाली तो थी! मैं उनकी बात सुनकर थोड़ा डर गई थी। कितनी डाली? वे फिर से उसी स्वर में बोलीं। मम्मी जी एक कटोरी दही में एक चम्मच चीनी डाल दी थी। मैंने झिझकते हुए कहा। बहू हमने तो एक कटोरी दही और एक कटोरी चीनी रखने को कहा था, दही में चीनी डालने को तो नहीं। अब मुझे बड़े जोर की हँसी आई। एक कटोरी दही में एक कटोरी चीनी, लेकिन मैं अपनी हँसी दबाकर उन्हें एक कटोरी चीनी दे आई। वे ऐसे ही हमेशा खाते थे। दो रोटी से ज्यादा कभी नहीं खाईं। ऐसे ही उन्होंने बताया कि उनको खुद में, बच्चों में व लिखने-पढ़ने के अलावा कुछ भी पसंद नहीं था। वे अपना पूरा समय साहित्य को देते थे। इस तरह से उन्होंने उनसे जुड़े कई रोचक प्रसंग बताए। वे कभी किसी से डरते नहीं थे, न ही किसी की परवाह करते थे जो कहना होता था, बड़ी निडरता के साथ अपनी बात कह देते थे। आगे वे बोलीं कि एक बार एक अखबार वाले उनका साक्षात्कार लेने के लिए घर पर आने वाले थे और वे अपने कमरे में

"देश-दुनिया में विख्यात बाल साहित्यकार निरंकार देव सेवक एक ऐसा नाम जो किसी परिचय का मोहताज नहीं है, मगर दुख तब होता है जब अपने ही शहर के लोग उनको उतना मान-सम्मान नहीं देते जो उनको देश-दुनिया से मिला है। बच्चों के मन पर अपनी कविताओं से नए रंग भरने वाले बाल साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध निरंकार देव सेवक जी के नाम से कोई स्मारक, उनकी कोई मूर्ति या कोई मठ आदि बने तो आज के समय में भी वे लोगों के लिए, खासतौर से बच्चों के लिए भी यादगार बने रहें।"

पत्र-पत्रिकाओं के बीच घिरे घर के मामूली कपड़ों में बैठे लिखने-पढ़ने में व्यस्त थे। मैंने उनसे कहा कि पापा जी अखबार वाले आ रहे हैं, आप अपने कपड़े बदल लो और मैं आपका कमरा थोड़ा साफ कर दूँ। वे फौरन बोले जिसे आना है, आ जाए, मैं यूँ ही रहूँगा। मतलब एकदम सरल न कोई दिखावा, न कोई शान।

वैसे हम जो भी रच रहे हैं, उसी तरह के माहौल में रहने से और उसमें ही डूबे रहने से उच्च कोटि का साहित्य लिख पाते हैं। कोई यूँ ही महान नहीं होता इसके लिए तन-मन से तपस्या करनी होती है और सालों के अथक प्रयास से ही उसका फल मिलता है।

निरंकार देव सेवक जी के पिता जी भी शेरो-शायरी करते थे। उनको देखकर ही वे भी छोटी-छोटी कविताएँ लिखने लगे, लेकिन उनको बाल कविताएँ लिखना मन को ज्यादा भाई। वे अपने इकलौते बेटे को बेहद प्यार करते थे। शायद यही कारण रहा हो कि उन्होंने अपने बेटे के नाम से दो बाल गीत संग्रह लिखे। पेशे से वकील थे, साथ ही अखबार के लिए भी लिखते थे। सेवक जी ने वकालत का काम काफी पहले ही छोड़ दिया था क्योंकि एक व्यक्ति का केस लड़ रहे थे तो उसने अपनी सोने की अंगूठी इनको दे दी और कहा जब पैसे होंगे तब आपको देकर अपनी अंगूठी वापस ले लेंगे लेकिन सेवक जी ने अंगूठी नहीं ली और कहा जब पैसे हो तब दे देना, किंतु वो व्यक्ति वापस लौटकर नहीं आया जबकि इनकी वजह से ही वह केस जीत गया था। इसी कारण सरल हृदय वाले सेवक जी ने आहत होकर वकालत का पेशा ही छोड़ दिया था और अमर उजाला के लिए संपादकीय लिखने लगे। उनका साहित्य देश के लिए एक धरोहर जैसा है।

देश-दुनिया में विख्यात बाल साहित्यकार निरंकार देव सेवक एक ऐसा नाम जो किसी परिचय का मोहताज नहीं है, मगर दुख तब होता है जब अपने ही शहर के लोग उनको उतना मान-सम्मान नहीं देते जो उनको देश-दुनिया से मिला है। बच्चों के मन पर अपनी कविताओं से नए रंग भरने वाले बाल साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध निरंकार देव सेवक जी के नाम से कोई स्मारक, उनकी कोई मूर्ति या कोई मठ आदि बने तो आज के समय में भी वे लोगों के लिए, खासतौर से बच्चों के लिए भी यादगार बने रहें।

कपिला वात्स्यायन : एक कलाविद विदुषी

भारतीय समाज में विद्वानों और विदूषियों की लंबी परंपरा रही है। आधुनिक काल में अपने देश में जो विदूषियाँ पैदा हुई हैं, उनमें से एक कपिला वात्स्यायन भी थीं। यूँ तो बहुत लोग उन्हें हिंदी के यशस्वी साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की पत्नी के रूप में भी जानते थे, लेकिन कपिला जी की अपनी अलग पहचान थी। उनकी पहचान राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर थी। कमला देवी चट्टोपाध्याय और पुपुल जयकर के बाद वह तीसरी महिला थीं जिनकी देश में पहचान संस्कृति नारी के रूप में बनी।

हम अकसर 'संस्कृति पुरुष' की चर्चा करते हैं, पर 'संस्कृति नारी' शब्द का इस्तेमाल नहीं करते। पद्म विभूषण कपिला जी का कद किसी मायने में 'अज्ञेय' से कम नहीं था। वह उतनी ही गंभीर, विनम्र और शालीन थीं। उन्होंने अपनी गरिमा जीवन भर बनाए रखी और अपने आत्मस्वाभिमान की हमेशा रक्षा की। वह राज्यसभा में मनोनीत सदस्य बनकर आईं तो कभी-कभी वह संसद के परिसर और गलियारे में मिल जाती थीं। उन दिनों अज्ञेय की जन्मशती मनाई जा रही थी, लेकिन सरकार ने उसके लिए कोई योजना नहीं बनाई थी। अज्ञेय का इतना बड़ा कद था कि सरकार को राष्ट्रीय स्तर पर कुछ करना चाहिए था। कपिला जी ने नैतिक जीवन भी जिया। इस बात का एक प्रमाण यह है कि एक दिन जब मैंने संसद में राज्यसभा द्वार के बाहर उन्हें खड़ा देखा तो मैंने एक पत्रकार के रूप में उनसे अपना परिचय देते हुए यह पूछा कि आप सदन में अज्ञेय की जन्मशती मनाने को लेकर कोई माँग क्यों नहीं करतीं? अगर आप सदन में यह सवाल उठाएँ तो हम लोग उसकी खबर दे सकते हैं, लेकिन वह थोड़ी देर चुप रहीं, कुछ नहीं बोलीं। कुछ देर बाद वह धीमे स्वर में बोलीं—"नहीं, यह उचित नहीं होगा। अलबत्ता, आप लोग कोई माँग करें। आप लोग कुछ करें।" मैं समझ गया कि कपिला जी अपने पूर्व पति की जन्मशती मनाने के लिए इसलिए माँग नहीं कर रही हैं क्योंकि उनके लिए यह अपने पद का एक दुरुपयोग होगा और वह नैतिक नहीं होगा। उस दिन मैंने जाना कपिला जी में कितनी गहरी नैतिकता छिपी है।

आमतौर पर लोग राजनीति ही नहीं, साहित्य की दुनिया में भी अपने परिवार के लोगों के लिए क्या-कुछ नहीं करते, लेकिन कपिला जी ने कभी भी अज्ञेय का सार्वजनिक रूप से नाम नहीं लिया। यह जरूर हुआ कि जब रजा फाउंडेशन की ओर से अशोक वाजपेयी ने अज्ञेय की जयंती पर एक आयोजन किया तो कपिला जी साहित्य अकादेमी के सभागार में आईं और उन्होंने अज्ञेय के बारे में अपने उद्गार व्यक्त किए। दरअसल उनकी चिंता केवल हिंदी तक नहीं थी, बल्कि उनकी चिंता भारतीय संस्कृति के संवर्धन और संरक्षण की थी। शायद यही कारण है कि उन्होंने इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र की स्थापना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और उसकी सदस्य सचिव भी बनीं। उन्होंने इस संस्था के जरिए भारतीय संस्कृति के संरक्षण के लिए अनेक व्याख्यान आयोजित किए और प्रदर्शनियाँ

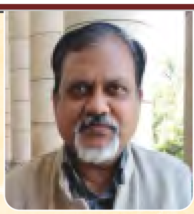

अरविन्द कुमार

जन्म : 09 दिसंबर, 1960, पटना।

संप्रति : पत्रकारिता के क्षेत्र में 34 साल से कार्यरत। लगभग 20 वर्षों से संसद की रिपोर्टिंग।

लेखन एवं प्रकाशन : *उपन्यास*—चाँद@आसमान डॉट कॉम; *कविता संग्रह*—सपने में एक औरत से बातचीत, यह मुखौटा किसका है, पानी का दुखड़ा, क्या तुम रोशनी बनकर आओगी आयरा; *कहानी संग्रह*—कॉल गर्ल; *व्यंग्य*—चोर पुराण, रावण को गुस्सा क्यों आता है।

सम्मान : भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार, शरद बिल्लौरे सम्मान, प्रकाश जैन स्मृति पुरस्कार, बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान।

संपर्क : ईमेल—vimal1820@gmail.com

भी लगवाई। यदि उनके कार्यों को देखा जाए तो पता चलता है कि उनके पास भारतीय संस्कृति की एक विराट कल्पना थी और उन्होंने बाजार के इस युग में संस्कृति की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। जीवन भर वह इस कार्य में लगी रहीं। वह इसे एक पुनीत कार्य मानती थीं। कपिला जी को संगीत नाटक अकादमी का ही फेलो नहीं बनाया गया, बल्कि वह ललित कला अकादमी की भी फेलो रहीं। मेरे ख़याल से संभवतः वह पहली ऐसी शख्सियत है जिन्हें देश की दो-दो शीर्ष अकादमियों ने फेलो बनाया। इससे पहले आज तक कभी भी किन्हीं दो अकादमियों ने किसी व्यक्ति को फेलो नहीं बनाया। उन्हें पद्‌म विभूषण की उपाधि से नवाजा गया जो भारत रत्न के बाद दूसरा सर्वोच्च नागरिक सम्मान है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कपिला जी का कितना गहरा सम्मान भारतीय समाज और कला जगत में था। वह लगभग निर्विवाद तथा अजातशत्रु बनी रहीं। उनकी नैतिकता का आलम यह है कि जब संसद के सदस्य के लाभ के पद को लेकर देश में बड़ा विवाद खड़ा हुआ तो उन्होंने उस विवाद को देखते हुए तुरंत अपनी सदस्यता से इस्तीफा दे दिया, लेकिन बाद में फिर राज्यसभा के लिए दोबारा मनोनीत हुईं।

> **“एक लेखिका की पुत्री होने के नाते और अज्ञेय की पत्नी होने के कारण उन्हें साहित्यकारों-कलाकारों का विशेष सान्निध्य मिला। इनमें जैनेंद्र से लेकर बनारसीदास चतुर्वेदी और हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे अनेक साहित्यकार शामिल हैं, लेकिन कपिला जी केवल साहित्य तक ही सीमित नही थीं। उन्हें नृत्य-चित्रकला, भारतीय लोक और पारंपरिक कला में भी गहरी रुचि थी। शायद यही कारण था कि उन्होंने प्रख्यात कथक गुरु शंभू महाराज से भी नृत्य में प्रशिक्षण लिया था, लेकिन कपिला जी की रुचि पठन-पाठन में अधिक रही और उन्होंने भारतीय नाट्यशास्त्र तथा लोक कला और इतिहास पर लगभग 20 किताबें भी लिखीं। उनके 200 से ज्यादा शोध पत्र भी प्रकाशित हुए।”**

ये सारी घटनाएँ बताती हैं कि उनके जीवन में कुछ आदर्श थे, कुछ मूल्य थे और कुछ स्वप्न भी थे जिन्हें वह 91 वर्ष की आयु तक पूरा करती रहीं। अज्ञेय से तलाक होने के बाद वह एकाकी जीवन ही व्यतीत करती रहीं, लेकिन अपने काम में लगी रहीं। जो लोग इंडिया इंटरनेशनल सेंटर जाते हैं, वे उन्हें वहाँ पुस्तकालय में बैठकर अकसर पढ़ते-लिखते देखते थे। वे इंडिया इंटरनेशनल सेंटर की एशिया परियोजना की प्रभारी थीं और इस संस्था की आजीवन न्यासी भी। वह स्वभाव से विनम्र, शांत तथा अंतर्मुखी व्यक्तित्व की थीं। उन्हें कभी भी किसी होड़ में नहीं देखा गया और न ही उन्हें अपने प्रचार में संलग्न देखा गया। उनके कार्य, उनकी किताबों और उनके व्याख्यानों ने उन्हें इस शिखर तक पहुँचाया। राष्ट्रीय आंदोलन में प्रेमचंद युग की लेखिका सत्यवती मलिक की पुत्री होने के नाते उन्हें साहित्य और कला विरासत में मिली थी। उनके भाई केशव मलिक अंग्रेजी के जाने-माने कवि और कला समीक्षक थे जो वर्षों तक टाइम्स ऑफ इंडिया में अपना स्तंभ लिखते रहे।

प्रसिद्ध पुस्तकें

- द स्क्वायर एंड द सर्कल
- डांस इन इंडियन पेंटिंग
- भरत : द नाट्यशास्त्र
- क्लासिकल इंडियन डांस इन लिटरेचर एंड द आर्ट्स
- ट्रांसमिशंस एंड ट्रांसफॉर्मेशंस : लर्निंग थ्रू द आर्ट्स इन एशिया

कपिला जी की शिक्षा-दीक्षा दिल्ली और अमेरिका के मिशिगन विश्वविद्यालय में हुई थी और उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से अपने जमाने के प्रख्यात इतिहासकार वासुदेव शरण अग्रवाल के निर्देशन में पीएच.डी. डिग्री प्राप्त की थी। कहा तो यह जाता है कि वह वासुदेव जी की पहली शिष्या थीं। इस तरह कपिला जी को जो अंतर्दृष्टि मिली, उसमें वासुदेव शरण अग्रवाल का भी योगदान है। एक लेखिका की पुत्री होने के नाते और अज्ञेय की पत्नी होने के कारण उन्हें साहित्यकारों-कलाकारों का विशेष सान्निध्य मिला। इनमें जैनेंद्र से लेकर बनारसीदास चतुर्वेदी और हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे अनेक साहित्यकार शामिल हैं, लेकिन कपिला जी केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं थीं। उन्हें नृत्य-चित्रकला, भारतीय लोक और पारंपरिक कला में भी गहरी रुचि थी। शायद यही कारण था कि उन्होंने प्रख्यात कथक गुरु शंभू महाराज से भी नृत्य में प्रशिक्षण लिया था, लेकिन कपिला जी की रुचि पठन-पाठन में अधिक रही और उन्होंने भारतीय नाट्यशास्त्र तथा लोक कला और इतिहास पर लगभग 20 किताबें भी लिखीं। उनके 200 से ज्यादा शोध पत्र भी प्रकाशित हुए।

कपिला जी महान विदुषी थीं और विलक्षण प्रतिभा की धनी थीं। वह कला जगत की प्रमुख हस्ती थीं। उन्होंने साहित्य कला और संस्कृति संवर्धन तथा विकास के लिए ऐतिहासिक कार्य किया। वह अपने आप में एक संस्था थीं।

रेणु की कलम कैमरा थी

सन् 2020 प्रसिद्ध रचनाकार फणीश्वरनाथ रेणु की जन्मशती का वर्ष है। हालाँकि यह वर्ष कोविड 19 जैसी वैश्विक महामारी की पीड़ा का वर्ष अधिक जाना जाएगा, परंतु फणीश्वरनाथ रेणु के प्रशंसक इस वैश्विक महामारी से जूझते वर्ष को भी महामारी का वर्ष न बनने देकर, उनकी जन्मशती का वर्ष ही सिद्ध कर रहे हैं। सामाजिक दूरी के इस काल में भले ही हम उनकी जन्मशती को सोशल मीडिया पर मना रहे हैं, परंतु मना रहे हैं पूरे मनोयोग से।

निर्देश निधि

शिक्षा : एम.फिल. (इतिहास)

लेखन विधा : कहानी, कविता, संस्मरण, समसामयिक लेख।

संप्रति : साहित्यिक गतिविधियों और जन कल्याणकारी संस्थाओं में सक्रिय।

प्रकाशन : विभिन्न स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में लेखन, लेख, कहानियाँ, संस्मरण, लघुकथाएँ आदि प्रकाशित।

सम्मान : संस्कार भारती से 'काव्य गरिमा' सम्मान, शुभम संस्था से 'हिंदी श्री' सम्मान, समन्वय संस्था से 'सृजन सम्मान', बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन में पुरस्कृत।

संपर्क : मोबाइल– 9358488084

ईमेल– nirdesh.nidhi@gmail.com

फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 04 मार्च, 1921 को बिहार के अररिया जिले के फॉरबिसगंज के पास गाँव औराही हिंगना में हुआ था। यूँ तो स्कूल में उनका नाम फणीश्वरनाथ मंडल लिखाया गया था, क्योंकि उनके पूर्वज धानुक जाति के मंडल ही थे। किसी ने पुकारा फुनेसर, किसी ने कुछ, उनकी दादी ने तो सदा पुकारा 'रिनुआ'। रिनुआ यानी जिसके जन्म के समय परिवार को ऋण लेना पड़ा हो। उसी रिनुआ से धीरे-धीरे परिवर्तित होकर 'रेणु' बन गया। वह रेणु जो साहित्य के आकाश पर एक ऐसा सितारा बनकर चमका जिसका प्रकाश दूर-दूर तक फैल गया। सात बरस की छोटी-सी वयस में ही बालक रिनुआ अपने देश को स्वतंत्रता दिलाने के स्वप्न देख रहा था। इसी भावना के तहत उसने अपने स्कूल में वानर सेना का गठन किया।

रेणु के पिता भी एक सच्चे देशभक्त थे। वे क्रांतिकारी पुस्तकें खूब पढ़ा करते थे। उनमें से कुछ वे पुस्तकें भी थीं जिन पर अंग्रेज सरकार ने प्रतिबंध लगा रखे थे। उनमें एक 'चाँद पत्रिका' भी थी, जिसके फाँसी अंक को सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया था। रेणु के पिता शिलानाथ मंडल के पास इस पुस्तक के होने की संभावना थी, अतः गोरे सिपाही उस अंक को हस्तगत करने के लिए उनके घर आ पहुँचे। रिनुआ के पिता ने कहा, "हाँ, मेरे पास यह अंक अवश्य है, यही नहीं और भी बहुत-सी ऐसी पुस्तकें हैं, पर अभी मेरा कोई नातेदार पढ़ने के लिए ले गया है।" बालक रिनुआ सुन रहा था, वह जानता था कि वह अंक और दूसरी कुछ ऐसी ही पुस्तकें पिता के सिरहाने रखी हैं, वह समझ गया कि पुस्तकों को बचाने के लिए पिता झूठ बोल रहे हैं। उसने उन पुस्तकों को उठाकर अपने स्कूल के बस्ते में रख लिया और छाता लेकर घर से निकल पड़ा। पुलिस वाले ने पूछा कि कहाँ जा रहा है? तो वह बोला कि सिमराहा जा रहा हूँ, फॉरबिसगंज की बस पकड़नी है, स्कूल जाना है। इस तरह उसने पुस्तकों को बचा

लिया। शाम को जब रिनुआ वापस लौटा तो घर वाले उस नन्हे से बालक की चालाकी पर हैरान थे।

रेणु 1942 में आजाद दस्ते में शामिल थे और अगस्त क्रांति में 15 अगस्त, 1942 को उन्हें सिमराहा स्टेशन से गिरफ्तार कर लिए गया। उन्हें स्वतंत्रता प्रिय थी अपने देश की ही नहीं, पड़ोसी देश नेपाल की भी। उन्होंने 1947 के बाद नेपाल के स्वतंत्रता संग्राम में भी सहयोग किया। उनका गाँव औराही हिंगना भारत-नेपाल सीमा पर स्थित है। वे नेपाली भाषा भी जानते थे। तब दोनों देशों की सीमा पर कोई प्रतिबंध नहीं थे और रोटी-बेटी का रिश्ता भी था जो कि आज तक भी बना रहा है।

फणीश्वरनाथ रेणु ने तीन विवाह किए थे। उन्होंने एक विवाह बाल विधवा से किया था। यही नहीं अपने एक पुत्र का विवाह भी उन्होंने बाल विधवा से कराया। उनकी अंतिम पत्नी लतिका जी उनके क्षय रोग के समय चिकित्सालय में उनकी नर्स थीं। बाद में दोनों ने विवाह कर लिया था। लतिका जी ने रेणु की बीमारी के दौरान और उनके अंतिम समय तक तन, मन और धन से साथ दिया।

रेणु हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रबल पक्षधर थे। बहुत कम लोग यह जानते हैं कि उन्होंने अपनी पुत्री का नाम वहीदा रखा था और अपनी पोतियों के नाम जरीना और शबाना रखे थे। यह परंपरा उनके परिवार में आज भी कायम है। वे एक-दूसरे समाज के मध्य शादी-विवाह भी होते देखना चाहते थे। उनकी बड़ी बेटी बताती हैं कि रेणु अपनी छोटी बेटी का विवाह किसी मुस्लिम परिवार में ही करना चाहते थे। परंतु उनकी इच्छा पूर्ण होने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई।

रेणु ने जो साहित्य रचा उसमें 'मैला आँचल' का स्थान विशिष्ट है। वर्णनात्मक शैली में लिखा गया उनका यह अद्‌भुत उपन्यास, हिंदी साहित्य के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ। आलोचकों ने गोदान के बाद इसे दूसरे स्थान पर आसन दिया।

मैला आँचल उपन्यास की एक रोचक कथा है। पहले इसका प्रकाशन रेणु ने स्वयं ही किया था। परंतु उसकी समीक्षाओं ने उपन्यास की अनुगूँज चहुँओर फैला दी। जब राजकमल प्रकाशन को पता लगा तो उसने उपन्यास कि सभी प्रतियाँ रेणु से ले लीं और उसे अपने बैनर तले प्रकाशित किया। राजकमल प्रकाशन के मालिक बताते हैं कि रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' का आना एक ऐतिहासिक घटना थी। उपन्यास के साथ रेणु को हाथी पर बैठाकर उनका जुलूस निकाला गया था। इस प्रकार का जुलूस न कभी पहले किसी लेखक की किसी कृति पर निकाला गया था और न ही बाद में अभी तक कोई ऐसा जुलूस निकाला गया है। साहित्य समाज और पाठक वर्ग में इस उपन्यास का उत्साह देखते ही बनता था।

प्रसिद्ध साहित्यकार नामवर सिंह कहते थे कि रेणु की कलम साधारण कलम नहीं है। जब वे लिखते हैं तो उनकी कलम कैमरा बन जाती है और तब वे एक-एक भाव को कागज पर चित्र की भाँति उकेर देते हैं। इस तरह वे एक जादुई किस्सागो बन जाते हैं।

लोगों ने जबरन कुछ विवाद भी रेणु के साथ जोड़े। कुछ लोगों ने अफवाह उड़ाई कि रेणु बंगाली थे। वे हीरालाल मुखर्जी के पुत्र फणींद्र नाथ मुखर्जी थे। कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने तो यहाँ तक कहा कि उनका उपन्यास 'मैला आँचल' सतीनाथ के उपन्यास की नकल था, परंतु साँच को आँच नहीं।

रेणू सरकारी अव्यवस्थाओं से बहुत खिन्न रहा करते थे। वे एक बार राजनीतिक सुधार के आवेश में 1972 के विधानसभा चुनाव में निर्दलीय प्रत्याशी के तौर पर खड़े हो गए, यद्यपि वे चुनाव हार गए। उन्होंने जे.पी. आंदोलन में भी सक्रिय भागीदारी की थी। उन्होंने अपने अनुभव लिखते समय अनेक बार सरकारी अव्यवस्थाओं और आपातकाल को लेकर बहुत रोष व्यक्त किया था। तत्कालीन राजनीतिक अवस्था से उपजे अपने असंतोष को लेकर उस समय उन्होंने अपने जो उद्‌गार लेखनीबद्ध किए थे, उसके कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं।

वे लिखते हैं कि मेरा यह घर (औराही हिंगना), घर नहीं एक 'शॉकएब्जोर्वर' है। अच्छी-से-अच्छी खबर और बुरी-से-बुरी सूचनाएँ मुझे यहीं मिली हैं। जब मैला आँचल का प्रकाशन हो रहा था तो दिल्ली के एक बहुत बड़े होटल में एक पार्टी का आयोजन किया गया था, उसकी सूचना मुझे इसी घर में मिली थी। मारे गए गुलफाम पर 'तीसरी कसम' नाम से फिल्म के निर्माण की स्वीकृति की सूचना भी यहीं मिली थी। उसे राष्ट्रपति अवार्ड मिला, यह सूचना भी यहीं मिली। साथ ही दुख भरी सूचनाएँ भी जैसे शैलेंद्र, मोहन राकेश, दुष्यंत कुमार, भारत भूषण अग्रवाल आदि के निधन की सूचनाएँ भी इसी घर में मिलीं और अब रातों-रात, वॉयस ऑफ अमेरिका से यहीं पर पता चला कि भारत में इमर्जेंसी लागू हो गई है।

वे फिर कहते हैं, "मेरे घर में चोरी हो गई है। चोरी गई चीजों में एक 350 पृष्ठों की पांडुलिपि के अलावा मेरी एक कीमती कलम भी है। इस कलम ने मुझे विश्वविख्याति प्रदान की थी। मैंने अब तक जो भी लिखा उसी कलम से। मेरी कलम तो चोरी चली गई, पर मैं इन कलम वालों से पूछता हूँ कि ये क्या कर रहे हैं। मुझे यहाँ से मुक्त करो यहाँ पर मेरा दम घुटा जा रहा है। यहाँ तो लेखनी और वाणी पर भी प्रतिबंध है। मुझे नेपाल जाना चाहिए। मैं वहीं अपनी आवाज बुलंद करूँगा, अन्यथा भारत की जेलों में घुट-घुटकर मर जाऊँगा। मैंने सैकड़ों-सैकड़ों पृष्ठों के ग्रंथ लिखे। क्या इसी दिन के लिए? अब मुझसे अधिक बर्दाश्त नहीं होता। मेरे जीने की इच्छा खत्म हो गई है। मुझे ये लोग जेल क्यों नहीं ले जाते? कल शाम को मैं फॉरबिसगंज के स्टेशन के चौराहे पर खड़ा होकर भाषण दूँगा। जानता हूँ, बोलने नहीं दिया जाएगा। बोलने के पहले ही गिरफ्तार कर लिया जाऊँगा, पर मैं यह करूँगा। अब मुझसे सहा नहीं जाता। मैं अपने हाथों अपना गला नहीं घोंट सकता।"

फिर वे व्यंग्य करते हैं, "साप्ताहिक हिंदुस्तान का बिहार विशेषांक और धर्मयुग का हास्य विशेषांक निकलने वाला है। मुझे भी कहा गया है इन पर कुछ लिखने को, क्या लिखूँ? सारा देश जेल बन गया है एक-एक साँस कैद में है, अपनी इच्छा से जी भी नहीं सकते तो बिहार पर क्या लिखूँ? डॉ. जगन्नाथ मिश्र की सरकार बीस सूत्री कार्यक्रम सफलतापूर्वक चला रही है। नसबंदी तेजी से हो रही है या संजय गांधी ने बिहार में दौरे कर बिहार की बहुत प्रगति कर दी? क्या लिखूँ बिहार विशेषांक पर?"

"और हास्य विशेषांक पर! मेरे जे.पी. जेल में। गोलियों और बूटों से यहाँ की जिंदगियाँ रौंदी जा रही हैं। बहते आँसू सूख नहीं पा रहे, आहों और यातनाओं के इस दौर में हास्य लिखूँ? अच्छा हुआ जो यह दिन देखने से पहले ही मेरी कलम चोरी चली गई।"

दुनिया में जितने भी दुख हैं बरदाश्त किए जा सकते हैं, केवल मानसिक दुख को छोड़कर। विशेषकर भावुक लोगों के लिए जो केवल लिख-पढ़ और बोलकर ही अपनी भावनाएँ व्यक्त कर सकते हैं। सोचो यदि उस पर अंकुश लग जाए तो उसकी क्या स्थिति होगी?

प्रजातंत्र का अर्थ है—देश में जो भला-बुरा हो रहा है, उसे जनता के सामने प्रकट कराना, लेकिन यह कैसा प्रजातंत्र है। देश में कहाँ, क्या हो रहा है किसी को पता नहीं। कहाँ कितनी बड़ी दुर्घटना हो गई, कहाँ क्या हो गया, कुछ पता नहीं। कितने लोग भूख, गरीबी, अत्याचार, दमन से मर गए कोई सूचना नहीं। मित्र, बंधु, साथी घर-परिवार के लोग कहाँ हैं, जेल में बचे भी हैं कि नहीं। कुछ पता नहीं यह क्या हो गया है? सरकार अपने कर्तव्य से हट गई है, अब विनाश की ओर जा रहा है अपना यह देश।

फिर वे सरकार को सतर्क करते हुए कहते हैं कि मेरा दिमाग एक टेप है। अभी देश में जितनी भी घटनाएँ घट रही हैं, इमरजेंसी समाप्त होने दो, मैं अपने दिमाग के टेप को वापस घुमाऊँगा और सारी टेप किताबों और फिल्मों के माध्यम से दुनिया के सामने रखूँगा।

रेणु दमन और शोषण के हमेशा ही विरोधी रहे। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के समय अंग्रेजी सरकार द्वारा उन्हें गिरफ्तार भी किया गया। उन्होंने जे.पी. आंदोलन में भी अपना सक्रिय योगदान दिया था। उस समय शासन की दमन और शोषणकारी नीति के विरोध में उन्होंने मैला आँचल के लिए प्रदान की गई 'पद्म श्री' की उपाधि का भी त्याग कर दिया था।

रेणु ने 1936 के आस-पास कहानी लेखन आरंभ किया था। पहले कुछ कच्ची कहानियाँ लिखीं, फिर उन्होंने जेल से छूटने के बाद परिपक्व लेखन किया जिसका आरंभ 'बटबाबा' से जाना जा सकता है। उनकी लिखी 63 कहानियों में मुख्यतः ठेस, संवदिया, एक आदिम रात्रि की महक, लाल पान की बेगम, मारे गए गुलफाम, पंचलाइट और रसप्रिया आदि बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं। 1972 में रचित 'भित्ति चित्र की मयूरी' उनकी अंतिम कहानी थी। उनकी कहानियाँ और उपन्यास वर्णनात्मक शैली में हैं। उनके लेखन में आंचलिकता प्रधान है। इस आंचलिक कथा लेखन का आरंभ भी उन्होंने ही किया और वे इस विधा में दक्ष हैं, अनन्य हैं। आंचलिकता के कारण उनको मुख्य धारा से दूर करने का प्रयास भी खूब किया गया।

उनकी सभी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक स्तर पर बहुत उन्नत हैं। वे किसी भी पात्र का मनोवैज्ञानिक विवरण बहुत ही दक्षता के साथ प्रस्तुत करते हैं। रेणु ने अनेक महत्वपूर्ण उपन्यास और कहानियों के अतिरिक्त संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि भी लिखे। उनके उपन्यास हैं—मैला आँचल, परती परिकथा, जुलूस, दीर्घतपा, कितने चौराहे और पलटू बाबू रोड। परंतु उनके उपन्यासों में सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास तो 'मैला आँचल' ही है, जो 1954 में आया। परती परिकथा भी उनका चर्चित उपन्यास है। उनके कथा संग्रह हैं—एक आदिम रात्रि की महक, ठुमरी, अग्निखोर, अच्छे आदमी। उनके संस्मरण हैं—ऋणजल, धनजल, वनतुलसी की गंध, श्रुत-अश्रुत पूर्व, समय की शिला पर। उन्होंने रिपोर्ताज भी लिखे जिनमें प्रमुख, नेपाली क्रांति कथा है। उनके निबंध हैं—ईश्वर रे और मेरे बेचारे। रेणु ने कविताएँ भी लिखीं। यहाँ उनकी लिखी एक कविता का छोटा-सा अंश प्रस्तुत है—

"हाँ याद है
उचक्के जब मंचों से गरज रहे थे
हमने उन्हें प्रणाम किया था
पहनाया था हार।
भीतर प्राणों में काट रहे थे हमें
हमारे वे बाप
हमारी बुझी ज्वाला को धधका कर
हमें अग्निस्नान कराकर पापमुक्त
खरा बनाया।
पल विपल हम अवरुद्ध जले
धारा ने रोकी राह, हम विरुद्ध चले
हमें झकझोर कर तूने जगाया था
'रथ के घरघर का नाद सुनो...
आ रहा देवता जो, उसको पहचानो...
अंगार हार अरपो रे...'।"

रामधारी सिंह दिनकर की मृत्यु के बाद लिखी इस कविता में उन्होंने उनकी विद्रोही स्वर वाली कविता 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' का उल्लेख किया है।

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी मारे गए गुलफाम पर बासु भट्टाचार्य के निर्देशन में 'तीसरी कसम' नाम से एक फिल्म बनाई गई थी, जिसके निर्माता सुप्रसिद्ध गीतकार शैलेंद्र थे। इस फिल्म और मैला आँचल उपन्यास ने तो जैसे रेणु को अमर ही कर दिया। उनके उपन्यास और कहानियाँ दोनों ही बराबर प्रसिद्ध हुए। इस अनोखे लेखक, रेणु को 'आजादी के बाद का प्रेमचंद' भी कहा गया।

एक किशोरी फुलझड़ी-सी

कतार में खड़े 'सरो' के पेड़ों में से एक के नीचे बैठा हूँ।

मेरे सामने एक किले का खंडहर है। किला एक शिला पर बनाया गया है और शिला समुद्र की ओर झुकी है। पता नहीं, यह किला किसने बनवाया था और कब? हो सकता है, पृथ्वी के प्रारंभ से ही यह किला यहाँ हो। अपनी जवानी में मुझे ऐसा लगा था। अब भी यही महसूस हो रहा है।

जिस दिन से होश आया तब से मैं घुमक्कड़ रहा हूँ। अनुभवों की उतरन का बोझ कंधे पर लादे जिंदगी की दुर्गम राहों पर यात्रा करता रहा हूँ। कितने ही देश देखे। कितने ही लोगों से हिला-मिला। मगर क्या बेचैन मन को राहत मिली?

नहीं!

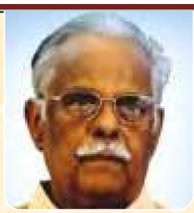

टी. पद्मनाभन

मलयालम भाषा के विख्यात साहित्यकार टी. पद्मनाभन जी का जन्म 01 जनवरी, 1931 को चेन्नई के पल्लीकन्नू, कण्णूर, मालाबार जिले में हुआ। इन्होंने वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा थलस्सेरी और कण्णुर कोर्ट में अभ्यास करने लगे। बाद में इनको एफ.ए.सी.टी. कंपनी में मैनेजिंग डायरेक्टर के पद पर नियुक्त किया गया। वर्तमान में आप सेवानिवृत्त होकर लेखन कार्य में संलग्न हैं। कहानी-संग्रह 'गौरी' के लिए उन्हें सन् 1996 में साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

तथापि जब कभी इस पुराने नगर में वापस आता हूँ तब मुझे एक अवर्णनीय शांति मिलती है। यह शहर मेरी माँ है जिससे मैं सदियों पहले बिछड़ा हूँ। मुझे लगता है कि यहाँ की तंग गलियाँ, बड़ा मैदान, मंदिर-मस्जिद, सबसे बढ़कर यह ढहा पुराना किला सब मेरे अपने हैं।

यहाँ का चप्पा-चप्पा जमीन-रेत का कण-कण मेरे लिए सिजा गया है।

यहीं पर एक वर्ष पहले मैं एक नया आदमी बना था।

अस्ताचल की ओर बढ़ते सूरज की किरणें सरोवृक्ष की झुकी डालियों से छनकर आ रही थीं। लोग समुद्रतट से लौट रहे थे। बहुत कम लोग वहाँ रह गए थे। जितने भी थे, उनमें बुजुर्गों की संख्या अधिक थी। वे सर्दी पड़ने से पहले घर पहुँचने की उतावली में चल रहे थे।

गले पर गुलूबंद बाँधे बुजुर्ग बड़ी बेंत की छड़ी घुमाते हुए मुझे पार कर गए। जवानों को कोई जल्दी नहीं थी। वे हाथ में हाथ लिए, एक-दूसरे से चिपके धीमी चाल से चल रहे थे। मुझे लगा—वे इसी की चिंता कर रहे थे कि अँधेरा क्यों जल्दी नहीं फैलता?

उन लोगों में से किसी ने मुझ पर ध्यान नहीं दिया।

मगर मैं तो उन पर ध्यान दे रहा था।

कुछ दिन पहले की बात होती तो मैं उनसे ईर्ष्या करता। आह भरकर बोल उठता—'सिर्फ मौज मनाने के लिए जन्मे हुए खुशनसीब।'

'मौज!'

मुझे हँसी आ रही है।

इसका कारण है। मुझे मालूम है कि उनमें ज्यादातर लोग खुशी मना नहीं सकते। वे कोई नकली आवरण ओढ़े हुए कहीं बहते जा रहे हैं। आत्म-प्रवंचना की किस वैतरणी की ओर? वे किसी से अपना संबंध नहीं जोड़ते। वे संबंध जोड़ ही नहीं सकते हैं।

मैंने मानव के जटिल संबंधों के बारे में सोचा। पहले भी कई बार सोचा है। फिर भी मैंने समझा नहीं कि वे ऐसी गुत्थियाँ हैं जिन्हें खोलना संभव नहीं।

'लेकिन क्या आज मैं समझ गया?' मैंने खुद सवाल किया।

क्या मैं अपनी गुत्थियाँ खुद खोल सका?

दिल का पुराना घाव फिर से हरा हो गया। खून रिसने लगा। मेरा मन बेचैन हो रहा है।

लड़का टिन का खिलौना अंगुलियों से घुमा रहा था जिससे आवाज निकल रही थी।

वह कुछ कहकर जोर से हँस पड़ी। कोई मजाक की बात होगी। उनकी दुनिया में सिर्फ हँसी-मजाक के लिए ही जगह है।

जब वे मुझे पार कर गए तब उस किशोरी को मैंने अच्छी तरह देखा। उसका मुखमंडल निर्मलता का दर्पण था। वह ऐसा ही रहेगा।

मैंने सोचा कि साँझ के झुटपुटे में पेड़ के नीचे पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे देख वह

भयभीत हो जाएगी। मेरा पक्का विश्वास था कि वह मुझे देखेगी। कोई खास कारण नहीं। वह मुझे देखेगी, बस!

मैं इंतजार कर रहा था।

मेरी प्रतीक्षा सही निकली। उसने मेरी ओर देखा। भयभीत होने के बदले वह किशोरी मुस्कराई। वह डरी नहीं। क्यों डरे? क्या मैं आदमी नहीं हूँ। परंतु... कितने लोग यह पहचानते हैं?

सहज ही सुंदर वह मुखमंडल अब और मनोहारी हो आया। न जाने क्यों, मेरी आँखों में आँसू भर आए। अतिशय आनंद के कारण हो सकता है।

क्या उसने मुझे पहचाना? कौन जाने?

आँखों से जब तक वह ओझल न हुई तब तक मैं उसे देखता ही रहा।

तभी वह ध्वनि सुनाई पड़ी। कोई हँसी का ठहाका लगा रहा है। मैंने मुड़कर देखा। वह किशोरी फुलझड़ी-सी प्रकाश फैला रही थी। मुझे ताज्जुब नहीं हुआ। मैं हमेशा हर जगह उसकी राह देखता हूँ। मेरे अंधकारमय जीवन में वह उल्का की तरह एकाएक आई और चौंधियाकर अदृश्य हो गई। वह अविस्मरणीय स्मृति बनकर रह गई।

वह ऐसी याद रह गई जो भुलाए नहीं भूलती। मैं अपनी आत्मा में ही उसे फिर से देख रहा हूँ।

मेरा अंग-अंग फड़क उठा। उस किशोरी के साथ उसकी छोटी बहन और छोटा भाई थे। दोनों को लेकर वह फुटपाथ से चली आ रही थी। उसने लहँगे के ऊपर इंद्रधनुषी रंग की जार्जेट की चुनरी-सी ओढ़ रखी थी। वह कुछ बड़ी हो गई है। वह

सरो पेड़ की टहनियों से होकर सीटी बजाती हवा और किले की चट्टान से टकराती तरंग उस किशोरी की खिलखिलाहट की दुहराती-सी लगीं।

साँझ की लाली पूरी तरह मिट गई और आसमान के कोने में दो-चार तारे चमक उठे। मैं यहाँ से नहीं उठा। मैं इस पेड़ के नीचे हिमाच्छादित पर्वत की उपत्यका में ध्यान-लीन योगी की तरह बैठा रहा। सीलन-भरा वातावरण, अँधेरा, सर्वत्र फैली हुई नीरवता! सागर भी जरा शांत हो गया है।

उस किशोरी से पहले-पहल मिलने का दिन स्मरण हो आया।

एक गूढ़ ध्येय हृदय में छिपा मैं यहाँ की गलियों में भटक रहा था। मुझे प्यार करने वाले कुछ लोगों से मैं बड़े सवेरे ही जाकर मिला। मैंने किसी भी तरह की पूर्व-सूचना उन्हें नहीं दी थी। लगता है कि मेरे व्यवहार ने उन्हें चौंका दिया था। उनके पूछने पर मैंने कहा—"यों ही मिलने आया। शायद फिर से इधर शीघ्र आने की संभावना नहीं है।"

मेरी आवाज पथरा गई होगी। फिर भी मेरी कही बात पर उन्होंने विश्वास किया। वे जानते हैं कि मैं कहीं स्थायी रूप से नहीं रहा करता।

पुराने रास्ते से ही फिर से चला। मंदिर व मस्जिद को पार किया। मैदान में थोड़ी देर बैठा रहा। वहाँ से उठकर फिर से घूमने लगा। कोई कोना नहीं छोड़ा। हर जगह गया।

आखिर थिएटर के सामने पहुँचा। वहाँ थोड़ी देर यों ही खड़ा रहा तो सोचा—'क्यों न सिनेमा देखा जाए?' वैसे मुझे सिनेमा हमेशा प्रिय रहा है। सिनेमा की ही बात क्यों कहूँ? संसार की सारी बातें मुझे प्रिय थीं।

शाम तक शो खत्म हो जाएगा। उसके बाद काफी समय है। कहीं भी जा सकता हूँ। जेब में पैसे हैं। होटल में कमरा लेने में कोई कठिनाई नहीं है। चाहूँ तो अपने निवास भी लौट सकता हूँ। वहाँ अपने बिस्तर पर आराम से लेटने के बाद...

मैंने जहर पीकर मरने का निश्चय कर लिया था।

मैं कैसे ऐसे निश्चय पर पहुँचा? इस संबंध में कुछ बता नहीं सकता। मेरे जीवन का बीता हर क्षण गहरे विषाद और निराशा से भरा था। मेरा यकीन था कि जिस किसी से मिलता हूँ, वह मुझे तबाह करने की ताक में बैठा है। इसलिए मैं सबसे नफरत करता व डरता था। मेरे दिल में संदेह की मशाल जल रही थी।

फिर भी कुछ लोगों को मैं सब कुछ भूलकर प्यार करता रहा।

वे भी मुझे पहचान नहीं सके। जीवन मेरे लिए असाध्य हो गया।

मेरा बचपन आनंदपूर्ण स्वप्न-सा बीता था।

साँस की घुटन उन्हीं दिनों शुरू हुई। आखिर जब हद हो गई तब तय किया कि खुदकुशी करूँगा। मौत के साथ कौन-सा दर्द खत्म नहीं होता?

उस दिन जेब में जहर की शीशी लिए थिएटर में जा बैठा तो अपने से कहा—'मरना चाहिए। तभी सुख और स्वाधीनता प्राप्त होगी।'

सबसे पीछे की कतार में मैं बैठ गया। मैटिनी में लोग बहुत कम थे। मैं खुश हुआ कि बिना झंझट के फिल्म देख सकूँगा।

जब फिल्म शुरू हो रही थी तब एक किशोरी और उसके पीछे दो छोटे बच्चे थिएटर के अंदर आ गए। वे बड़ा शोर मचाते हुए आए। लड़कों में जो घबराहट हुआ करती है, वह उनमें नहीं थी।

उस किशोरी ने कोई गाना गुनगुनाते हुए पूरे थिएटर पर लापरवाही से नजर डाली। मैं उस समय मन-ही-मन प्रार्थना कर रहा था—'हे भगवान! उन बच्चों को मेरे पास न भेजना। इन अंतिम क्षणों में मेरे मन में जो शांति है, उसे वे नष्ट करेंगे। इस थिएटर में कितनी ही जगह खाली है! कहीं भी बैठें। सिर्फ यहाँ न आएँ।'

"उस किशोरी ने कोई गाना गुनगुनाते हुए पूरे थिएटर पर लापरवाही से नजर डाली। मैं उस समय मन-ही-मन प्रार्थना कर रहा था—'हे भगवान! उन बच्चों को मेरे पास न भेजना। इन अंतिम क्षणों में मेरे मन में जो शांति है, उसे वे नष्ट करेंगे। इस थिएटर में कितनी ही जगह खाली है! कहीं भी बैठें। सिर्फ यहाँ न आएँ।'"

मैं प्रार्थना कर ही रहा था कि वह बालिका मेरे पास आकर बैठ गई। साथ में दो बच्चे भी।

मैंने उनकी तरफ बिलकुल नजर नहीं डाली।

अगर मुझे तंग नहीं करना था तो वे मेरे पास ही क्यों आए?

वह किशोरी अपनी छोटी बहन और छोटे भाई से तमिल व मलयालम की मिश्रित भाषा में बतियाने लगी। बड़ी तेज रफ्तार से।

बातचीत के बीच वह किसी-किसी गाने की कड़ी सुनाने में अपनी कुशलता भी दिखा रही थी। बीच-बीच में वह खिलखिला उठती, जैसे पहाड़ी नदी चट्टान से टकराकर छितरा पड़ती है।

खेल शुरू हुआ।

टेक्सास के विशाल घास के मैदान पर दो जवान मजनू अपनी युवती के लिए खून बहाने को तैयार खड़े हैं।

बंदूक से गोली निकलती है। आदमी छटपटाकर गिरता है। घोड़े सरपट दौड़ते हैं। दुश्मन हजारों गायों को हाँक ले जाते हैं।

मेरी बगल में बैठी वह किशोरी भी उस समय टेक्सास की एक गोशाला में थी। वह बेहद बेकरार दिखाई पड़ी। एक घोड़ा जब तड़पकर गिर पड़ा तब वह हार्दिक दुख से बोल उठी—"हाय बेचारा!"

डेविड को बीभत्स मुखमंडल क्लोज अप में देखा तो वह बोल उठी—"छिः!"

कहती हुई वह अपनी कुर्सी के पीछे की ओर खिसकी।

किसी बदमाश के हाथ में गोली लगी तो वह बालिका मेरा हाथ झटकाते हुए बोली—"शाबाश! ऐसा ही होना चाहिए। है न?"

मैं कोई आवेग दिखाए बिना पर्दे पर ही आँख गड़ाए रहा।

मुझे आश्चर्य हुआ। यह किशोरी उत्साह की चिनगारी है!

उस बालिका के प्रति मेरे मन में जो चिढ़ थी, वह धीरे-धीरे दूर हो गई।

उसने मेरा हाथ खींचकर पूछा—"क्या आप मुझे इसकी कहानी सुना देंगे?"

मैंने उसके चेहरे की ओर ध्यान से देखा। उसकी नाक की गुलफी के हीरे की तरह उसका चेहरा भी जगमगा रहा है।

"बोलिए! क्या नहीं बताएँगे? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। मैं इस वर्ष छठे दर्जे में ही आई हूँ।"

तब मेरे मन में कितनी खुशी हुई। पहली बार एक लड़की इतने प्यार और आजादी से मुझसे एक चीज माँग रही थी। मेरा कुर्ता सस्ता व फटा था। मेरे बाल सँवरे नहीं थे। दाढ़ी नहीं बनाई थी। फिर भी उस लड़की को लगा कि मैं एक अंग्रेजी फिल्म की कहानी उसे बता सकता हूँ।

एक बार मैं माँ के साथ अस्पताल गया तो एक नर्स ने पूछा—"बेटा है न?"

माँ ने कहा—"जी हाँ।"

"बीड़ी का काम करता होगा न?"

माँ के कुछ कहने से पहले ही मैंने बताया—"हाँ।"

परंतु वह नर्स बुजुर्ग थी।

मेरी बगल में जो मेरी लियाकत पर विश्वास रखती है, वह एक छोटी किशोरी है।

वह ऐसी दुनिया में जीवन बिताती है जिसमें हमेशा सूरज का प्रकाश फैला रहता है और फैली रहती है गुलाब के फूल की खुशबू। उसमें ऐसा कोई कोना नहीं जो अँधेरा और काँटों से भरा हो...।

आधा खेल जब खत्म हुआ तब उसने मुझे सुनाने के लिए एक प्यारा गाना गाया।

उसकी एक पंक्ति यों थी—

"चंदा रे जा रे जा रे!"

मैंने जब कहा कि गाना बहुत अच्छा रहा तब उसने कहा—"मेरे पिता को भी गाना बहुत पसंद है।"

छोटे भाई की जेब से उसने चाकलेट का एक पैकेट लेकर खोला—एक मुझे भी दिया।

जब मैंने सोचा कि मरने की तैयारी करने वाले मुझ जैसे नाचीज को यह लड़की चाकलेट दे रही है तब अपनी हँसी को रोक नहीं सका।

मैंने कहा—"नहीं, बच्ची, मुझे नहीं चाहिए।"

वह नहीं मानी।

"क्यों? क्या आप चाकलेट नहीं खाएँगे? क्या आपको पसंद नहीं? मुझे पसंद है। माँ मुझे हमेशा चाकलेट देती है। क्या आपकी माँ आपको चाकलेट देती हैं?"

पूछती है—मेरी माँ क्या मुझे चाकलेट देती है? शायद उसने सोचा होगा कि मैं एक बालक हूँ।

उसकी जिद मानकर मैंने चाकलेट खा लिया।

खेल खत्म हुआ तो उसने कहा—"अभी खत्म नहीं होता तो अच्छा रहता।"

हम बाहर निकले। सूर्यास्त का समय हो रहा था।

उसने पूछा—"आप आगे कब फिल्म देखने आएँगे?"

मैं कुछ नहीं बोला।

"क्या अगले हफ्ते आएँगे? क्या आ नहीं सकेंगे?"

मुझे मजाक सूझा। मैंने कहा—"माँ के अनुमति देने पर आऊँगा।"

वह खिलखिला उठी—"माँ से कहना कि मैं भी आ रही हूँ।"

मैं हँस नहीं सका।

उसकी छोटी बहन और छोटा भाई जल्दी कर रहे थे।

मुझे उस किशोरी से विदा होने पर दुख हुआ।

वह बोली—"मैं इंतजार करूँगी।"

मैंने यों ही हामी भरी—"अच्छा।"

"चीरियो!"

"गुडबाई!"

वह बच्चों को साथ लेकर चली गई।

मैं उसी को अपलक देखता खड़ा रहा। मैंने देखा—वह बड़ी हो गई है। उसका ब्याह हो गया है।

मेरे मन में टीस उठी। मैं अकेला हूँ। दुखी हूँ। परंतु दूसरे क्षण मैंने सोचा—वह बालिका स्वयं खुश रहना और दूसरों को खुश रखना चाहती है।

मैं अकेले घर चला। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि अँधेरी कोठरी में घंटों तक साँस की घुटन झेलते पड़े रहने के बाद एक खुले मैदान में पहुँचा हूँ। अनजाने ही मेरे मन में एक परिवर्तन हो रहा था।

उस रात मैंने जहर पीकर प्राण नहीं त्यागे।

उसके बाद पूरा साल बीता है। मैं फिर से पहले की तरह आवारा दर-दर भटकता हूँ। अब मैं यह जानना नहीं चाहता कि दूसरे लोग मेरे बारे में क्या कहते हैं। वे जो चाहे कहें, परवाह नहीं।

बीती बातें धुँधली ही दिखाई देती हैं। इसलिए तर्क का कोई तुक नहीं। एक ही राहत है—

मानव-जीवन में कई ऐसी घटनाएँ होती हैं जिनको तर्क से समझा नहीं जा सकता।

कुहरा खूब घना छा रहा है। मैं जा रहा हूँ।

उस फुलझड़ी-सी किशोरी से फिर मुलाकात अवश्य होगी। हो सकता है—चार या पाँच सौ वर्ष इस बीच बीत जाएँ। सारे आदमी, जिनमें मैं भी शामिल हूँ, एक दोराहे पर शंकित खड़े होंगे। उसी घड़ी में... तुम, मत जाइयो!

(टी. पद्मनाभन द्वारा लिखित और एन.ई. विश्वनाथअय्यर द्वारा अनूदित एवं राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'एक किशोरी फुलझड़ी-सी' से साभार)

लॉर्ड मैकाले की कैद से बचपन को मुक्ति दिलाती नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति

लगभग 34 वर्षों के लंबे इंतजार के बाद यशस्वी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और कर्मठ केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री (वर्तमान शिक्षा मंत्री) डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत को एक सकारात्मक और सार्थक नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के रूप में वस्तुतः 'लॉर्ड मैकाले की मानसिक कैद' से भारत के बचपन को मुक्ति दिलाने का सद्प्रयास किया गया है।

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की निर्मम हत्या के पश्चात उनके सुपुत्र राजीव गांधी जब

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

जन्म : 07 जून, 1941

संप्रति : श्री शर्मा हिंदी के प्रख्यात कवि एवं लेखक हैं। अध्यापन का 35 वर्षों का अनुभव है और पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, पीलीभीत (महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली) के सेवानिवृत्त प्राचार्य हैं।

प्रकाशन : 24 से ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें चार बाल कविता-संग्रह भी शामिल हैं।

सम्मान : पं. मदन मोहन मालवीय सम्मान, काव्य रत्न पुरस्कार, गीत रत्नाकर पुरस्कार, साहित्यश्री पुरस्कार और नाट्य रत्न पुरस्कार।

संपर्क : मोबाइल– 9412070351

ईमेल– ynsarun@gmail.com

भारत के प्रधानमंत्री बने, तो उनके दिमाग में भारत की शिक्षा-व्यवस्था का कोई स्वरूप अगर था, तो स्वाभाविक रूप से वह था 'दून स्कूल, देहरादून' की अंग्रेजी से पूर्णतः लदी-फदी 'कॉन्वेंट प्रणाली' की उस शिक्षा का, जिसके माध्यम से वे स्वयं पढ़कर निकले थे। यही कारण रहा कि राजीव गांधी ने पूर्णतः विदेशी अवधारणा के अनुसार ही भारत की शिक्षा व्यवस्था को चलाने का स्वप्न संजोया।

उस समय प्रधानमंत्री राजीव गांधी के सलाहकार थे सैम पित्रोदा, जो स्वयं विदेशी रंग में पूरी तरह रंगे हुए थे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के 'शिक्षा मंत्रालय' का नाम बदलकर 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' कर दिया गया। इस प्रकार हमारे देश की 'शिक्षा-व्यवस्था की अवधारणा' को ही पूरी तरह बदल दिया गया और शिक्षा का उद्देश्य अब 'विद्वान' पैदा करना न होकर सिर्फ और सिर्फ 'मानव संसाधन' (Human Resourse) बनाना ही रह गया।

भारत विगत 34 वर्षों से इसी विदेशी अवधारणा पर चलते हुए देश में केवल पढ़े-लिखे 'मानव संसाधन' का निर्माण करता रहा है और जैसे बड़े-बड़े बाँधों और इमारतों के निर्माण के लिए ईंट-गारे आदि का प्रबंध किया जाता है, उसी प्रकार देश को बनने के लिए 'मानव संसाधन' तैयार किए गए। इसका सबसे बड़ा और घातक दुष्परिणाम यह हुआ कि हमारे देश में गाँव-गाँव और गली-गली में 'इंग्लिश मीडियम' स्कूलों की बाढ़ आ गई। धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा कि स्वाधीन भारत में एक बार फिर से 'लॉर्ड मैकाले' की आत्मा जिंदा हो गई है। हमारी शिक्षा की नींव 'प्राइमरी शिक्षा' पूरी तरह 'कॉन्वेंट' प्रणाली की गिरफ्त में आ गई और देश के सरकारी स्कूलों में पढ़ने वालों की स्थिति निरंतर सोचनीय होती गई।

वस्तुतः संस्कारों के सृजन की जगह अब शिक्षा का लक्ष्य 'कारों की प्राप्ति' हो गया। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो हमारी

शिक्षा 'दो मुही' बन गई। सबसे दुखद स्थिति यह हुई कि भारत में एक शिक्षा-व्यवस्था तो बन गई थी 'इंडिया' के लिए और दूसरी बना दी गई थी 'भारत' के लिए। अब 'इंडिया' के लिए बनी व्यवस्था वाली शिक्षा पाने वालों का लक्ष्य था डिग्री लेकर अमेरिका, जापान, इंग्लैंड या किसी भी देश में स्थित विदेशी कंपनी में जाकर लाखों डॉलर का 'पैकेज' प्राप्त करना और 'भारत' की शिक्षा प्राप्त करने वालों को 'हीन भावना से देखा जाना' और उन्हें दोयम दर्जे का आँकते हुए सामान्य रूप से देश के बेरोजगारों की पंक्ति में खड़ा कर देना।

इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि हमारे युवाओं को 'पढ़ा-लिखा संसाधन' मानकर विदेशों में नौकरियाँ मिलीं और परोक्ष रूप से हमारी श्रेष्ठ प्रतिभाओं का उपयोग विदेशों की समृद्धि के लिए होता रहा और भारत की प्रतिभाओं को बेरोजगारी की चक्की में पिसने को बाध्य होना पड़ा। यह स्थिति निरंतर चलती ही नहीं रही, बल्कि खूब फली-फूली और इसी के परिणामस्वरूप हमने भारत की गली-गली में अंग्रेजी मीडियम की शिक्षा देने वाली दुकानें खुलवा दीं।

नई रोशनी का उदय हुआ

भारत का सौभाग्य ही कहा जाएगा कि सन् 2014 में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में एनडीए की सरकार बनी और भारत की शिक्षा-व्यवस्था को आमूलचूल बदलने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति भारत के प्रख्यात वैज्ञानिक प्रोफेसर कस्तूरीरंगन के नेतृत्व में गठित की गई।

आपको जानकार आश्चर्य होगा कि भारत की 'नई शिक्षा नीति-2020' को बनाने के लिए पूरे भारत की 500 से ज्यादा पंचायतों के साथ ही कुल 6,600 ब्लॉक पंचायतों तथा 676 जिला पंचायतों के हर स्तर के लोगों से सुझाव लिए गए हैं। किसी भी लोकतांत्रिक राष्ट्र में शायद यह पहला मौका है कि किसी नीति को बनाने के लिए इतने बड़े स्तर पर आमजनों और शिक्षाविदों की राय ली गई हो। यही कारण है कि देश भर में 'नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति' का भरपूर स्वागत किया गया है।

मेरी दृष्टि में लोकतांत्रिक व्यवस्था अपनाने वाले किसी राष्ट्र की शिक्षा-व्यवस्था को बनाने के लिए इतने व्यापक स्तर पर शायद ही कभी विचार-विमर्श किया गया हो। लोकसभा में भारत के शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने जब यह बताया कि पूरे भारत की जनता से प्राप्त ढाई लाख से भी अधिक सुझावों का मंथन करके यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति तैयार की गई है तो सभी सांसदों ने हर्षध्वनि के साथ इसका स्वागत किया था।

नई शिक्षा नीति का प्रमुख उद्देश्य

वास्तव में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' 21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है, जिसका सर्वोपरि उद्देश्य हमारे देश के बहुमुखी विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के शाश्वत आधार को सुरक्षित रखते हुए, 21वीं शताब्दी की शिक्षा-व्यवस्था के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों के संयोजन में शिक्षा-व्यवस्था के सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन पर जोर देती है। दूसरे शब्दों में कहें, तो 2020 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति पूर्णतः 'सर्वसमावेशी स्वरूप' में शिक्षा को देखने का सकारात्मक प्रयास है।

संक्षेप में, नई शिक्षा नीति में भारत की शिक्षा-व्यवस्था का रूप अब कैसा होगा, इसे निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है–

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में कैबिनेट ने नई शिक्षा नीति (New Education Policy, 2020) को स्वीकृति दे दी है। 34 वर्षों के बाद भारत की शिक्षा नीति में बदलाव किया गया है। नई शिक्षा नीति की उल्लेखनीय बातें सरल तरीके से इस प्रकार समझी जा सकती हैं। देश की शिक्षा व्यवस्था का मूल ढाँचा अब पूर्व से बदलकर निम्न प्रकार रहेगा–

5 वर्ष आधारभूत शिक्षा (5 Years Fundamental Education)

1.	Nursery	@ 4 Years
2.	Jr KG	@ 5 Years
3.	Sr KG	@ 6 Years
4.	Std 1st	@ 7 Years
5.	Std 2nd	@ 8 Years

3 वर्ष की तैयारी वाली शिक्षा (3 Years Preparatory Education)

6.	Std 3rd	@ 9 Years
7.	Std 4th	@ 10 Years
8.	Std 5th	@ 11 Years

3 वर्ष की मिडिल शिक्षा (3 Years Middle Education)

9.	Std 6th	@ 12 Years
10.	Std 7th	@ 13 Years
11.	Std 8th	@ 14 Years

4 वर्ष की सेकेंडरी शिक्षा (4 Years Secondary Education)

12.	Std 9th	@ 15 Years
13.	Std SSC	@ 16 Years
14.	Std FYJC	@ 17 Years
15.	STD SYJC	@ 18 Years

10वीं की बोर्ड परीक्षा खत्म होगी। एम.फिल. (M.Phil.) बंद हो जाएगा। कॉलेज की डिग्री चार साल की रहेगी।

सर्वाधिक मूल्यवान परिवर्तन

नई शिक्षा नीति का सबसे मूल्यवान और सार्थक परिवर्तन यह हुआ है कि अब पाँचवीं कक्षा तक के छात्रों को मातृभाषा, स्थानीय भाषा और राष्ट्र भाषा में ही पढ़ाया जाएगा। बाकी विषय चाहे वो अंग्रेजी ही क्यों न हो, एक विषय के तौर पर ही पढ़ाया जाएगा।

वास्तव में सभी शिक्षाविदों का यह मानना रहा है कि बच्चों को प्राथमिक शिक्षा यदि उनकी मातृभाषा या फिर स्थानीय भाषा में दी जाए, तो वह अधिक उपयोगी होती है और प्रत्येक बच्चा बहुत शीघ्र उसे ग्रहण करता है। अब अंग्रेजी का भूत बच्चों को अनावश्यक रूप से नहीं डराएगा और रटने की प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगेगा।

अब 12वीं कक्षा में आकर ही बोर्ड की परीक्षा देनी होगी, जबकि इससे पहले 10वीं बोर्ड की परीक्षा देना अनिवार्य होता था, जो अब नहीं होगा! अब नवीं से 12वीं कक्षा तक सेमेस्टर पद्धति में पढ़ाई के बाद परीक्षा कराई जाएगी। स्कूली शिक्षा को 5+3+3+4 फॉर्मूले के तहत पढ़ाया जाएगा।

वहीं सबसे मूल्यवान परिवर्तन कॉलेज की उच्च शिक्षा में हुआ है। अब डिग्री स्तर की शिक्षा तीन और चार साल की होगी, यानी कि ग्रेजुएशन के पहले साल पर सर्टिफिकेट, दूसरे साल पर डिप्लोमा, तीसरे साल में डिग्री मिलेगी और जो विद्यार्थी 'शोध के क्षेत्र' में जाना चाहेंगे, उन्हें डिग्री के चौथे वर्ष में 'शोध' के विषय पढ़ाए जाएँगे और वे एक वर्ष में एम.ए. करके पीएच.डी. कर सकेंगे। वस्तुतः तीन वर्ष की डिग्री उन छात्रों के लिए है, जिन्हें आगे चलकर कोई उच्च शिक्षा नहीं लेनी है। वहीं उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को चार साल की डिग्री करनी होगी और चार साल की डिग्री करने वाले विद्यार्थी एक साल में एम.ए. कर सकेंगे।

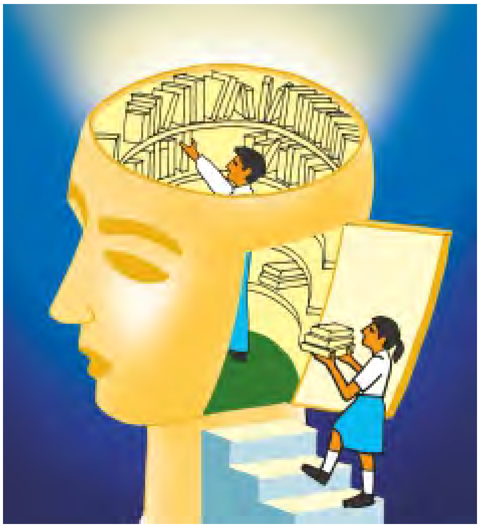

अब विद्यार्थियों को एम.फिल. (M.Phil.) नहीं करना होगा, बल्कि एम.ए. करने के बाद छात्र अब सीधे पीएच.डी. (Ph.D.) कर सकेंगे।

लीक से हटकर नए परिवर्तन

नई शिक्षा नीति में विद्यार्थियों को एक ऐसी सुविधा दी गई है, जो अब तक नहीं थी और लाखों विद्यार्थी अपनी वैयक्तिक मजबूरियों के चलते अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पाते थे। अब विद्यार्थी किसी एक कोर्स को कुछ समय के लिए स्थगित करके दूसरा कोर्स बीच में कर सकेंगे। सबसे बड़ी बात यह है कि नई शिक्षा नीति में देश की उच्च शिक्षा में आगामी सन् 2035 तक एनरोलमेंट का अनुपात बढ़कर 50 प्रतिशत करने का लक्ष्य प्राप्त करना रखा गया है। बीच में अगर कोई विद्यार्थी किसी कारण दूसरा कोर्स करना चाहे, तो वह अपने पहले कोर्स से 'सीमित समय के लिए' ब्रेक लेकर दूसरा कोर्स कर सकता है और उसके बाद अपना पहला कोर्स भी पूरा कर सकता है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में भी अनेक नए सुधार किए गए हैं ताकि देश के युवाओं को निर्बाध शिक्षा के अवसर मिल सकें। सुधारों में ग्रेडेड अकेडमिक, प्रशासनिक और वित्तीय स्वायत्तता देना (ऑटोनॉमी) आदि शामिल हैं।

नई शिक्षा नीति में जो सबसे महत्वपूर्ण बात हुई है, वह यह है कि क्षेत्रीय भाषाओं को महत्व देते हुए इन भाषाओं में 'ई-कोर्स' शुरू करने की पहल की गई है, जिससे एक ओर विद्यार्थियों को अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति लगाव के कारण अपनी पढ़ाई पूरी करने का उत्साह होगा तो दूसरी ओर क्षेत्रीय भाषाओं का विकास भी सुनिश्चित होगा। वर्चुअल लैब्स बनने के साथ ही पूरे देश में नेशनल एजुकेशनल टेक्नोलॉजी फोरम (NETF) शुरू किया जाएगा।

स्मरणीय है कि आज देश में 45 हजार कॉलेज हैं और सरकारी, निजी, डीम्ड विश्वविद्यालयों के साथ-साथ अनेक संस्थान चल रहे हैं, जिनके लिए अब एक समान नियम होंगे, ताकि राष्ट्रीय एकता स्थापित की जा सके और उच्च शिक्षा में एकरूपता के साथ ही गुणवत्ता भी सुनिश्चित हो सके।

एक और उल्लेखनीय उपलब्धि वर्तमान नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की यह है कि इसमें हमारी प्राचीन भाषाओं संस्कृत, पालि, प्राकृत-अपभ्रंश तथा पर्शियन के उद्धार और विस्तार के साथ-साथ इनमें उच्चस्तरीय शोध के द्वार पहली बार खोले गए हैं।

हमारे शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' का स्वप्न रहा है कि भारत की प्रतिभा का उच्चतम सदुपयोग भारत में ही हो और जो 'ब्रेन-ड्रेन' अर्थात 'प्रतिभा-पलायन' हो रहा है, उसे रोका जाए, ताकि हमारी भारतीय मेधा और प्रतिभा भारत के सर्वतोमुखी विकास में लग सके! डॉ. 'निशंक' का सपना तो यह है कि दूसरे देशों के युवा भारत में पढ़ने आएँ ताकि हमारी शिक्षा का लोहा पूरा विश्व माने।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विस्तृत विचार-विमर्श के पश्चात लाई गई 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' भारत की शिक्षा-व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने जा रही है, जिसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि प्राथमिक स्तर पर बच्चे अपनी मूल मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करेंगे और उनमें राष्ट्रीयता की भावना बलवती होगी। कालांतर में भारत से भाषाओं की लड़ाई स्वतः समाप्त हो जाएगी। जब सभी को अपनी मातृभाषा और अपनी क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता मिलेगी, तो स्वाभाविक रूप से भाषा के झगड़े का कोई स्थान ही नहीं रहेगा, जो हमारे भारत की एकता और समृद्धि का द्वार खोलेगा।

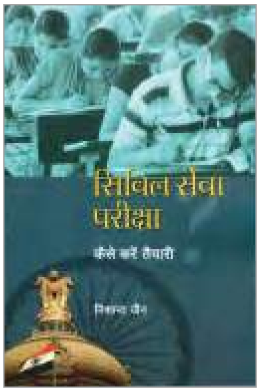

समीक्षक : **विजय कुमार 'शाश्वत'**

लेखक : **निशान्त जैन**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 126

मूल्य : रु. 145/-

सिविल सेवा परीक्षा

कैसे करें तैयारी

देश की प्रशासनिक मशीनरी की रीढ़ कही जाने वाली भारतीय सिविल सेवा भारत सरकार की नागरिक सेवा है। भारत में सिविल सेवा की शुरुआत का श्रेय लॉर्ड कार्नवालिस को जाता है, लेकिन वर्ष 1854 में मैकाले समिति ने भारत को पहली आधुनिक सिविल सेवा प्रदान की। 1855 के बाद भारतीय नागरिक सेवा (आई.सी.एस) के लिए भर्ती योग्यता के आधार पर शुरू हुई। प्रारंभ में इसके लिए अंग्रेजों का ही चयन किया जाता था। कालांतर में सन् 1922 के बाद इस परीक्षा का आयोजन भारत में किया जाने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से इन सिविल सेवाओं ने भारतीय एकता, अखंडता और संप्रभुता को अक्षुण्ण बनाए रखने में अग्रणी भूमिका निभाई है। गौरतलब है कि महान स्वतंत्रता सेनानी सरदार वल्लभभाई पटेल ने भारतीय नागरिक सेवा को 'स्टील फ्रेम' के नाम से संदर्भित किया था।

देश की इस सर्वप्रतिष्ठित सिविल सेवा से जुड़कर समाज की सेवा करना हर युवा का सपना होता है, लेकिन उनके सपनों को पंख देते हैं उनका धैर्य, जज़्बा और मेहनत। अपना मुकाम हासिल करने के लिए मेहनत और तपस्या तो सब करते हैं लेकिन सही समय, सही दिशा, सही निर्देशन और ईमानदारी से किया गया प्रयास ही आपको अपने लक्ष्य तक पहुँचाता है। प्रायः हिंदी पट्टी के अभ्यर्थियों में एक भ्रांति बनी हुई है कि अंग्रेजी माध्यम से ही सिविल सेवा में सफलता पाई जा सकती है, लेकिन हिंदी पट्टी के निशान्त जैन (पुस्तक के लेखक) ने वर्ष 2014-15 में संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षा में 13वाँ स्थान लाकर सब भ्रांतियों का खंडन कर दिया।

इस पुस्तक में लेखक निशान्त जैन ने परीक्षा की योजना, समग्र तैयारी, क्या पढ़ें-कैसे पढ़ें जैसे बिंदुओं पर गहनता से प्रकाश डाला है। विषयवार पुस्तकों की सूची, समसामयिक के लिए समाचार पत्र-पत्रिकाओं का चुनाव और कौन-सी वेबसाइटों का अवलोकन किया जाए, की पूरी जानकारी एक अभ्यर्थी की समस्त शंकाओं का शमन करती है। पुस्तक को 10 अध्यायों में विभक्त किया गया है। परीक्षा की तैयारी से पहले इसका पाठ्यक्रम, परीक्षा के चरण और इसकी सेवाओं की जानकारी अति आवश्यक है। इस पुस्तक में इन्हीं सब बातों पर चर्चा की गई है।

सर्वविदित है कि संघ लोक सेवा परीक्षा में प्रतिवर्ष आठ-नौ लाख अभ्यर्थी शामिल होते हैं, लेकिन आमतौर पर कुल रिक्तियों का 12-13 गुना अभ्यर्थी ही प्रारंभिक परीक्षा में सफल होते हैं। अतः इसके लिए सशक्त रणनीति व सटीक मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। चूँकि प्रारंभिकी क्वालिफाई प्रकृति की होती है, इसलिए इसे उत्तीर्ण कर आपको मुख्य परीक्षा की तैयारी योजनाबद्ध तरीके से करनी होती है। इसमें सात प्रश्न पत्र होते हैं, जिसमें दो प्रश्न पत्र आपके द्वारा चुने गए वैकल्पिक विषय के होते हैं। इस परीक्षा में सिविल सेवकों में नैतिकता और सत्यनिष्ठा का भाव भरने के लिए 'नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा और अभिरुचि' नामक एक प्रश्न पत्र 2013 की परीक्षा से शुरू किया गया है। पुस्तक में परीक्षा के पहले, परीक्षा के दौरान किन-किन बिंदुओं पर आपको अपना ध्यान केंद्रित करना है, विस्तार से समझाया गया है।

सिविल सेवा परीक्षा का सबसे महत्वपूर्ण व अंतिम पड़ाव है साक्षात्कार (व्यक्तित्व परीक्षण)। पुस्तक में साक्षात्कार क्या है, इसकी तैयारी कैसे करें, साक्षात्कार बोर्ड के सामने कैसा व्यवहार रखें, प्रश्न का जवाब देते समय संतुलित दृष्टिकोण कैसे अपनाएँ, जैसे बिंदुओं पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक का अंतिम व सबसे अहम भाग है 'कुछ प्रेरणादायक कहानियाँ'। इन कहानियों को पढ़ते समय अभ्यर्थी के अंदर असीम ऊर्जा का संचार होता है। ये कहानियाँ उन सफल सिविल सेवकों की हैं जिन्होंने संसाधनों के अभाव, प्रतिकूल वातावरण, विविध समस्याओं को दरकिनार करते हुए यह मुकाम हासिल किया और प्रबल इच्छाशक्ति का उदाहरण स्थापित किया। साथ ही उन सभी अभ्यर्थियों को सफलता की राह दिखाई है जो अपनी असफलता का ठीकरा अपने भाग्य पर फोड़ते हैं और संसाधनों के अभावों के पीछे अपनी कमियों को छिपाने की कोशिश करते हैं।

समग्र रूप से यह पुस्तक सिविल सेवा का सपना देखने वाले हर अभ्यर्थी की समग्र तैयारी में एक मार्गदर्शक की भूमिका निभाएगी।

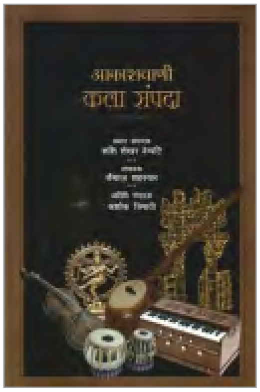

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

प्रधान संपादक : **शशि शेखर वेम्पटी**

संपादक : **फ़ैयाज़ शहरयार**

अतिथि संपादक : **अशोक त्रिपाठी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 184

मूल्य : रु. 280/-

आकाशवाणी कला संपदा

यह पुस्तक आकाशवाणी से प्रसारित कला संबंधी कार्यक्रमों के आलेखों का संग्रह है। इसमें वार्ताएँ हैं, भेंटवार्ताएँ हैं और परिचर्चाओं की प्रतिलिपियाँ भी। इस पुस्तक में आकाशवाणी की हिंदी पत्रिका 'सारंग' के 1941 से 1954 तक के अंकों में प्रकाशित चुनिंदा आलेख हैं। यह तीव्र स्वतंत्रता संघर्ष, स्वतंत्रता प्राप्ति और नव स्वतंत्र देश के निर्माण का युग था। इस दौरान कला के क्षेत्र में हो रहे बदलावों की बेचैनी और खुशी की झलक इन आलेखों में भी है। ये कार्यक्रम ऑल इंडिया रेडियो के दिल्ली, मुंबई, लखनऊ और नागपुर केंद्रों से प्रसारित हुए थे। कुछ आलेखों के प्रसारण केंद्र के नाम पुस्तक में अनुपलब्ध हैं।

आकाशवाणी हर दौर में लेखकों, कलाकारों और संस्कृतिकर्मियों को आकर्षित-आमंत्रित करती रही है। इस पुस्तक में शामिल लेखक और कलाकार अपने-अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठित और स्थापित थे या उभरती हुई प्रतिभा के रूप में थे। हमें यह जानकर आनंद और रोमांच होता है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी, अमृत लाल नागर, जैनेन्द्र कुमार, नरेन्द्र शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी जैसे बड़े-बड़े साहित्यकारों ने आकाशवाणी के लिए लिखा और इससे जुड़े रहे। महान कथाकार प्रेमचंद भी एक बार आकाशवाणी से कहानी पाठ के लिए वाराणसी से दिल्ली आए थे।

विषयों के अनुसार यह पुस्तक छह भागों में विभाजित है—'कला-विमर्श', 'स्थापत्य और मूर्ति', 'संगीत', 'नृत्य', 'चित्रकला' और 'फिल्म'। कला-विमर्श संबंधी आलेखों में कला के विभिन्न पहलुओं पर चिंतन है, इसकी बढ़ती व्यावसायिकता की चिंता है और इस बात पर जोर है कि कला अभिजात्य वर्ग की संपत्ति बनकर न रह जाए, बल्कि वह इतनी सहज, सरल और सुलभ हो कि आम लोगों तक पहुँच सके। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस पुस्तक में प्रकाशित अपनी ललित निबंध जैसी वार्ता—'कला कला के लिए या कला जीवन के लिए' में लिखा है, "कला का एकमात्र प्रयोजन है मनुष्य को सुसंस्कृत बनाना।...सच्ची कला वही है जो मनुष्य को पर-दुखकातर बनाए, संवेदनशील बनाए।...कला मनुष्यत्व की उपज है, मनुष्यत्व की उद्बोधक है और मनुष्यत्व की विजयध्वजा है।"

पुस्तक के स्थापत्य और मूर्ति संबंधी आलेखों में मातृ देवी के पूजन की परंपरा, मथुरा की मूर्तियों, नृत्यरत शिव की नटराज प्रतिमा, साँची के स्तूप, खिलौनों के इतिहास आदि पर वार्ताएँ हैं। जैनेन्द्र कुमार ने अपने आलेख 'देलवाड़ा' में लिखा है, "आबू पर्वत के शिखर पर बने हुए देलवाड़ा के मंदिर भारत की आस्था, उसकी संस्कृति और उसकी निष्ठा के उज्ज्वल प्रतीक हैं।"

इस पुस्तक में संकलित 52 आलेखों में सबसे अधिक आलेख संगीत के बारे में है। निस्संदेह रेडियो ने शास्त्रीय, उप-शास्त्रीय, लोक और फिल्म संगीत को सामान्य जन तक पहुँचाया तो दूसरी ओर संगीत ने भी रेडियो की लोकप्रियता को नई ऊँचाई दी। पुस्तक के इस भाग में संगीत साधकों के जीवनीपरक आलेख हैं, उनसे भेंटवार्ताएँ हैं, संगीत के इतिहास और वर्तमान की चर्चा है एवं समूह गान, वृंदवादन, लोक संगीत, तान तथा संगीत की स्वरलिपि पर भी वार्ताएँ हैं। एक आलेख राष्ट्रगान 'जनगणमन' पर है, जिसकी रचना कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर ने 1912 में की थी और स्वयं इसे संगीतबद्ध भी किया था। इस आलेख में राष्ट्रगान की प्रामाणिक स्वरलिपि दी गई है। कविता और संगीत में क्या संबंध है, इस विषय पर शास्त्रीय गायक पंडित ओंकारनाथ ठाकुर, कवि सुमित्रानंदन पंत तथा रामकुमार वर्मा के बीच एक सरस सोदाहरण अंतरवार्ता भी है। एक साक्षात्कार में सुनने वाले और सुनाने वाले, जो यहाँ एक रसिक श्रोता और एक शास्त्रीय गायक हैं, के बीच विनोदपूर्ण शिकवे-शिकायत हैं।

नृत्य संबंधी दो वार्ताएँ हैं, जो नृत्य-मुद्राओं और नृत्य के मूल्यांकन पर आधारित हैं। चित्रकला वाले भाग में भारतीय चित्रकला के इतिहास पर केंद्रित वार्ताएँ हैं, जैसे—गुप्तकालीन चित्र और कला, मुगल चित्रकला और भारतीय चित्रित ग्रंथ आदि। इसमें आधुनिक भारतीय चित्रकला और चित्रकला पर लोक-कला के प्रभाव पर भी आलेख हैं।

पुस्तक के अंत में फिल्मों से जुड़ी वार्ताएँ हैं, जो उस समय तक व्यापक लोकप्रिय कला बन चुकी थी। यहाँ भारत में सिनेमा के विकास, उसके आदर्श और व्यावसायिकता, उसके उपयोग की संभावना और दुरुपयोग की आशंका जैसे विभिन्न पहलुओं पर चर्चा है।

आज के दृश्य-श्रव्य माध्यमों की भरमार के दौर में भी श्रव्य संचार साधन के रूप में रेडियो की लोकप्रियता बढ़ रही है। आकाशवाणी के पास आवाजों का जो अनमोल खजाना है, उसका मुद्रित रूप में भी संरक्षण आवश्यक है। दुर्भाग्य से आज रेडियो की 'सारंग' जैसी प्रिंट पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद हो गया है और इसके उपलब्ध अंक भी सामान्य पाठकों के लिए दुर्लभ हैं। अतः आकाशवाणी द्वारा इनमें प्रकाशित उल्लेखनीय आलेखों का पुस्तक रूप में प्रकाशन एक सराहनीय और स्वागत योग्य कदम है। इस कड़ी में नौ पुस्तकों के प्रकाशन की योजना है।

'आकाशवाणी कला संपदा' को पढ़ना उस दौर के कला-स्पंदन, कला-विमर्श, इसकी प्रक्रिया और प्रतिक्रिया से गुजरना है। इसे पढ़ना भारत के सांस्कृतिक इतिहास से गुजरना भी है।

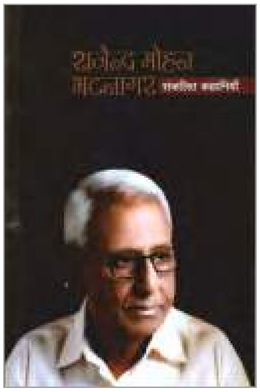

राजेंद्र मोहन भटनागर
संकलित कहानियाँ

समीक्षक : **एम.ए. समीर**

लेखक : **राजेन्द्र मोहन भटनागर**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 272

मूल्य : रु. 280/-

कहानी साहित्य का वह रूप है जिसने उपन्यास से अधिक लोकप्रियता प्राप्त की है और कथा-साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऐसी मान्यता है कि मनुष्य के जन्म के साथ ही कहानी का भी जन्म हुआ और अनेक चरणों-सोपानों को पार करते हुए इसने लोक-मन को प्रभावित किया। कहानी की सबसे विशिष्ट बात यह है कि यह एक संक्षिप्त आख्यानात्मक रचना होती है, जिसमें रोचकता एवं प्रभाव का मिला-जुला सम्मिश्रण होता है। विभिन्न कालखंडों में अनेक महान कथाकार हुए हैं, जिन्होंने कथा-साहित्य को अपनी लेखनी से सींचा और समृद्ध किया और ऐसी कालजयी कहानियाँ रचीं, जो अमर हो गईं। इसी श्रेणी के कथाकार हैं राजेंद्र मोहन भटनागर, जिनका कथा-संसार अत्यंत समृद्ध है। साहित्य में अपनी विशिष्ट उपस्थिति दर्ज कराने वाले महान साहित्यकार विष्णु प्रभाकर जी ने भटनागर जी को 'सादगी का कहानीकार' कहा है तो कमलेश्वर जी ने उन्हें मानव-मन से संवाद करने वाला कहानीकार। और यह सत्य भी है कि भटनागर जी ऐसी कहानियों के रचयिता हैं, जो सीधे मानव-मन से संवाद करती हैं।

राजेंद्र मोहन भटनागर का कथा-साहित्य लोक-व्यवहार से संबद्ध है। उनकी कहानियों में ऐसे समाज का उल्लेख मुख्य रूप से देखा जा सकता है, जो भय, कुंठा, प्रताड़ना एवं उपेक्षा का शिकार रहा है। उनके इस कथा-संकलन में 20 कहानियाँ संकलित हैं और सभी कहानियाँ मानव-मन से संवाद करती हुई प्रतीत होती हैं।

इस संकलन की कहानी 'गौरैया' एक ऐसी कहानी है, जो मर्म की चाशनी में लिपटी हुई है। इस कहानी में समाज की उस वास्तविकता को उघाड़ा गया है, जिसने सामाजिकता को नष्ट-भ्रष्ट कर लील लिया है। इस कहानी के मुख्य पात्र सरवती और दुलारे हैं। दोनों पति-पत्नी हैं, जो एक ऐसी बस्ती को अपने निवास के लिए चुनते हैं, जहाँ ऊँची-ऊँची और कई-कई मंजिला इमारतें खड़ी हुई हैं। इस दंपती का मानना है कि यहाँ बड़े रईस लोग रहते हैं तो मजदूरी मिलने में तो आसानी रहेगी ही, साथ ही ओढ़ने-पहनने के लिए इन अमीरजादों की उतरन के रूप में कपड़ा-लत्ता भी मुफ्त में मिल जाया करेगा और कभी-कभार बचा-खुचा खाना भी।

सरवती और दुलारे का दांपत्य जीवन आशानुरूप व्यतीत हो रहा था। सरवती की गर्भावस्था से दुलारे की खुशी का ठिकाना न था। वह सरवती को प्रेमस्वरूप 'गौरैया' कहता था, अपने मन की गौरैया! एक दिन उनके जीवन में वह दुर्घटना घटती है, जिसके परिणामस्वरूप न केवल दुलारे का जीवन समाप्त हो जाता है, बल्कि उसकी गौरैया के पंख भी वहशी गिद्धों द्वारा नोच लिए जाते हैं। सरवती के साथ, गर्भावस्था में, जिस प्रकार समाज के कुछ हैवानों द्वारा कुकर्म किया गया, वह अत्यंत शोचनीय स्थिति है और समाज के उस वर्ग पर सवालिया निशान लगाती है, जो गूँगे-बहरे हो तमाशबीन बने रहते हैं। समाज की न जाने कितनी गौरैयों के साथ इस प्रकार का अशोभनीय एवं अक्षम्य अपराध किया जाता है, इसी वास्तविकता का प्रकटीकरण भटनागर जी ने मार्मिक शब्द-शैली में किया है।

इसके अलावा गीला आँचल, लाजो, त्यागपत्र और अन्य कहानियाँ भी अत्यंत पठनीय हैं। संक्षेप में कहूँ तो यह संपूर्ण कथा-संकलन भटनागर जी की वह प्रस्तुति है, जो जन-चेतना को जागरूक बनाए रखने में सहायक है।

चुनिंदा विज्ञान कथाएँ

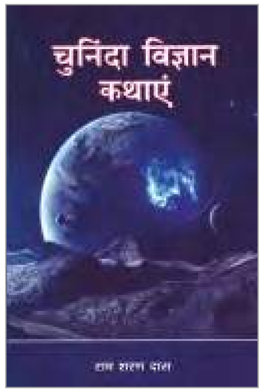

समीक्षक : **एम.ए. समीर**

लेखक : **राम शरण दास**

प्रकाशक : विज्ञान प्रसार, नोएडा

पृष्ठ : 82

मूल्य : रु. 70/-

अगर हम विज्ञान कथा-साहित्य की बात करें तो 1488 में विश्व प्रसिद्ध चित्रकार लियानार्दो दा विंची ने एक कहानी लिखी थी, जो 'फ्लाइंग मशीन' के नाम से प्रकाशित हुई। हालाँकि इसमें विज्ञान के पूर्ण मापदंडों का प्रस्तुतिकरण देखने को नहीं मिलता, लेकिन फिर भी विज्ञान की कुछ झलक तो अवश्य ही दिखाई पड़ती है। फिर भी इस कहानी को पहली विज्ञान कथा मानने में मतभेद हैं। एकमत से जिसे पहली विज्ञान कथा माना जाता है, वह है फ्रेंकेंस्टाइन, जिसकी लेखिका हैं मेरी शैली। वैसे विज्ञान कथा-संसार को ऊँचाई प्रदान की एच.जी. वेल्स ने, जिनकी टाइम मशीन और द वॉर ऑफ द वर्ल्ड जैसी कहानियाँ पाठकों के बीच विशिष्ट रूप से सराही गईं। इसके बाद तो खूब विज्ञान कथाएँ लिखी गईं और इस तरह से कथा-साहित्य में विज्ञान के प्रवेश ने कथाओं को रोचकता प्रदान की, जिन्हें पाठकों के बीच खूब लोकप्रियता भी मिली।

विज्ञान कथाओं को अंग्रेजी भाषा से जोड़कर देखा जाता है और कुछ लोग यह मानते हैं कि हिंदी भाषा में विज्ञान कथाएँ सिकुड़ी हुई और सिमटी हुई हैं। मेरा विचार है कि ऐसा नहीं है। हिंदी भाषा में भी विज्ञान संबंधी अनेक श्रेष्ठ कथाएँ रची गई हैं। अगर हम देखें तो आश्चर्य वृत्तांत, चंद्रलोक की यात्रा, आश्चर्यजनक घंटी, मंगल यात्रा, छाया पुरुष इत्यादि ऐसी अनेक विज्ञान कथाएँ हैं, जो मूल रूप से हिंदी भाषा में ही रची गईं और लोकप्रिय भी रहीं।

'चुनिंदा विज्ञान कथाएँ' में लेखक ने विश्व की छह अत्यंत लोकप्रिय एवं रोचक विज्ञान कथाओं का स्वतंत्र हिंदी भावानुवाद प्रस्तुत किया है। प्रत्येक कथा पाठक को एक नए कल्पनालोक की सैर कराती है, जहाँ वह रोमांच की पराकाष्ठा का अनुभव करता है। ये कथाएँ न केवल पाठक का मनोरंजन करती हैं, बल्कि सोच बदलने के साथ-साथ उसके चिंतन-मनन को विस्तार भी देती हैं।

इस पुस्तक की एक कथा विस्मय लोक अमेरिकी वैज्ञानिक, विज्ञान-संचारक और कलिंग पुरस्कार से सम्मानित प्रोफेसर जॉर्ज गैमो की प्रसिद्ध विज्ञान कथा 'मिस्टर टंपकिंस इन वंडरलैंड' का एक संक्षिप्त हिंदी रूपांतरण है। यह कहानी 'टंपकिंस' नामक पात्र के इर्द-गिर्द घूमती है, जो एक लिपिक हैं और आइंस्टाइन के सापेक्षता के सिद्धांत के अनुसार एक ऐसे लोक में प्रविष्ट हो जाते हैं, जहाँ का जीवन अनेक विस्मयकारी घटनाओं से भरा पड़ा है। टंपकिंस के लिए सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो तब होती है, जब वे सापेक्षता के सिद्धांत का जीवित अनुभव करते हैं। उस समय तो टंपकिंस के आश्चर्य का कोई ठिकाना ही नहीं रहता, जब वे उस साइकिल सवार को देखते हैं जो आश्चर्यजनक रूप से अपनी साइकिल के साथ-साथ खुद गति की दिशा में छोटा होता जा रहा था। उन्होंने विचार किया कि वे उस साइकिल सवार से इस संबंध में विचार-विमर्श करेंगे, इसलिए वे पास ही खड़ी साइकिल पर सवार हो उसकी ओर चल पड़ते हैं। उन्हें यह आशा थी कि वे भी उस साइकिल सवार की तरह छोटे हो जाएँगे, लेकिन यह अनुभव कर उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही कि उनके साथ ऐसा कुछ भी नहीं हुआ, बल्कि हुआ इसके विपरीत ही। सड़क के साथ-साथ दुकानें और उनकी खिड़कियाँ सब संकुचित हो गए। इसी तरह अनेक विस्मयों को उजागर करती हुई यह कहानी आगे बढ़ती है जिस कारण अनेक रोमांचक दृश्य मस्तिष्क में कौंधने लगते हैं।

इस पुस्तक में वर्णित अन्य कथाएँ भी अनेक विस्मयकारी रोमांचों से परिपूर्ण हैं और इस संदर्भ में मैं यह कहना चाहूँगा कि विज्ञान कथाएँ कल्पनालोक में ले जाकर मनोरंजन तो करती ही हैं, साथ ही व्यक्ति के चिंतन-मनन को विस्तार भी प्रदान करती हैं और रचनात्मकता एवं प्रौद्योगिकीय विकास की ओर प्रवृत्त भी करती हैं। पुस्तक 'चुनिंदा विज्ञान कथाएँ' का उद्देश्य भी यही है।

इंद्र

देवलोक के वर्तमान राजा–पुरंदर की गाथा

समीक्षक : **एम.ए. समीर**

लेखक : **आशुतोष गर्ग**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल

पृष्ठ : 336

मूल्य : रु. 299/-

आशुतोष गर्ग द्वारा लिखा गया उपन्यास 'इंद्र' अपने शीर्षक में ही नहीं, बल्कि कथानक में ही गहरी रोचकता समेटे हुए है। जन-सामान्य में देवताओं और उनकी दिव्य शक्तियों को जानने की बड़ी उत्सुकता देखी गई है और जब बात देवताओं के राजा अर्थात इंद्र की हो तो जन-सामान्य की उत्सुकता का क्या कहना!

यह कहना कदाचित असंगत न होगा कि लेखक ने अपने विशेष पाठक वर्ग के लिए इस उपन्यास की रचना की है। इसके साथ ही यह कहना भी समीचीन होगा कि पौराणिक पात्रों की प्रयोगशाला में 'इंद्र' नामक पौराणिक पात्र उनका दूसरा और सफल प्रयोग साबित होता लग रहा है। लेखक का पहला प्रयोग 'अश्वत्थामा : महाभारत का शापित योद्धा' सफलता का परचम लहरा चुका है। इससे प्रयोगधर्मी लेखक को पौराणिक पात्रों पर कुछ और शोध एवं प्रयोग करने हेतु बल मिला जिसका परिणाम 'इंद्र' के रूप में सामने आया।

आशुतोष गर्ग के अनुसार, इंद्र किसी देवता अथवा दिव्य पुरुष का नाम नहीं, बल्कि यह एक पद है, एक उपाधि है। जो भी देवताओं का राजा होगा, उसे 'इंद्र' के नाम से पुकारा जाएगा। अलग-अलग मन्वंतरों में अलग-अलग दिव्य पुरुषों ने देवराज इंद्र के पद को सुशोभित किया है। इस मन्वंतर में देवराज इंद्र का पद सँभाला है महर्षि कश्यप और अदिति के 12 पुत्रों में से एक पुरंदर नामक देवता ने।

प्रस्तुत उपन्यास में यह तथ्य तो स्पष्ट है कि पुरंदर को देवराज इंद्र का पद प्राप्त है, लेखक ने यह कहीं स्पष्ट नहीं किया कि पुरंदर को इंद्र का पद किन विशेषताओं या दिव्य शक्तियों के कारण मिला। 100 अश्वमेध यज्ञों को संपन्न कराने जैसी परिपाटी तो कई पुराण-पुरुष संपन्न करा चुके हैं अथवा पुरंदर से अधिक वीरता, धीरता एवं दिव्यता कई अन्य सुर, असुर और राजाओं ने प्रदर्शित की, लेकिन उन्हें इंद्र का पद नहीं मिला। इस तथ्य पर प्रकाश डाला जाता तो उपन्यास की रोचकता में अवश्य ही कुछ और वृद्धि होती।

निस्संदेह प्रस्तुत उपन्यास 'इंद्र' का कथानक उत्तरोत्तर रोचकता की सीढ़ी चढ़ता हुआ अभिभूत करने लगता है। संभवतः पुरंदर के

चारित्रिक दुर्गुण पाठकों को सदैव सचेत करते प्रतीत होते हैं कि कोई भी व्यक्ति कितने भी उच्च पद पर बैठा हो तो उसे अपने देश, समाज और जन-सामान्य तक से प्रतिकार तथा अवहेलना झेलनी पड़ती है, जो कि पग-पग पर पुरंदर को झेलनी पड़ी।

'इंद्र' के लेखक आशुतोष गर्ग का कथा-संयोजन सराहनीय है और संवाद सशक्त एवं कथानक को गति प्रदान करने वाला है। उपन्यास के कथानक में जो विभिन्न कथाओं का ताना-बाना बुना गया है, वे कथाएँ इतनी सारगर्भित और सुरुचिपूर्ण हैं कि उनमें से कई कथाओं पर अलग-अलग कई उपन्यास लिखे जा सकते हैं। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं कि इस एक उपन्यास में कई उपन्यासों का आनंद, भाव, सार समाहित है। अवश्य ही इस उपन्यास को पढ़ना पाठकों के लिए सुखद अनुभव रहेगा।

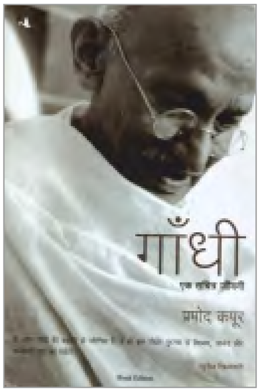

गांधी

एक सचित्र जीवनी

समीक्षक : **विजय कुमार 'शाश्वत'**

लेखक : **प्रमोद कपूर**

अनुवादक : **मदन सोनी**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल

पृष्ठ : 324

मूल्य : रु. 999/-

एक धर्मयोद्धा, नेता, सेवक और राजनीतिज्ञ के रूप में मोहनदास करमचंद गांधी का जीवन और उनके आदर्श संपूर्ण विश्व के लिए प्रेरणास्रोत हैं, लेकिन वास्तव में यह उनके व्यक्तित्व की जटिलता थी जिसने उनको असाधारण रूप से दिलचस्प बनाया था। उनके जीवन और बौद्धिक विकास से संबंध रखने वाले ऐसे बहुत से सूक्ष्म ब्योरे हैं जो उनकी उपलब्धियों की महानता के धुँधलके में अदृश्य रह गए हैं। हालाँकि अभी तक महात्मा गांधी पर विभिन्न विद्वानों द्वारा 300 से अधिक जीवनियाँ लिखी गई हैं। लेकिन इतिहासकार प्रमोद कपूर ने इस सचित्र जीवनी में उन ब्योरों को एकत्र कर आधुनिक भारतीय इतिहास की सर्वाधिक पूज्य प्रतिमा को जीवन की धड़कनों से भर दिया है, और ऐसा करते हुए यह पुस्तक इस विषय पर केंद्रित तमाम दूसरी कृतियों के संदर्भ में एक नया प्रतिमान रचती है। यह पुस्तक 'गांधी : एन इलस्ट्रेटेड बायोग्राफी' का हिंदी अनुवाद है।

महात्मा गांधी का व्यक्तित्व और उनकी प्रसिद्धि का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि वे कभी संयुक्त राज्य अमेरिका नहीं गए, लेकिन अटलांटिक के उस पार बहुत से लोगों की उनमें अटूट श्रद्धा थी। पादरी डॉ. जान हेंस होम्स ने 1921 के अपने प्रवचन में उन्हें 'संसार का सबसे महान पुरुष' कहा। यहीं नहीं अमेरिका के एक अन्य धर्म प्रचारक डॉ. इली स्टानली ने 'द क्राइस्ट ऑफ द इंडियन रोड' पुस्तक लिखी जो सबसे ज्यादा बिकने वाली पुस्तक है।

लेखक ने पुस्तक की शुरुआत 'गांधी के साथ मेरा प्रयोग' शीर्षक से की है जिसमें उन्होंने लिखा है कि एक मित्र की सलाह पर जब उन्होंने 98 आवृत्ति में विभाजित 'द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी' पढ़ना शुरू किया तो उसने अगले छह माह में मेरे जीवन को बदलकर रख दिया। प्रस्तुत पुस्तक सात खंडों में विभाजित है। जैसे-जैसे पुस्तक के पृष्ठ पलटते जाते हैं, दुर्लभ चित्रों के साथ गांधी के जीवन से जुड़ी तमाम जानकारियों की तहें खुलती जाती हैं। 'हिंदुस्तान, इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीका के शुरुआती वर्ष' खंड में गांधी के जन्म, शिक्षा, विवाह, पहली लंदन यात्रा, दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान सामाजिक विचारक, जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' से मिली प्रेरणा, टॉल्स्टॉय फॉर्म का निर्माण आदि विषयों के साथ-साथ दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के दौरान अस्वस्थ हुई कस्तूरबा को गांधी जी द्वारा लिखे गए पत्र को स्थान देते हुए सचित्र वर्णन किया गया है।

पुस्तक का दूसरा खंड 'हिंदुस्तान वापसी, असहयोग आंदोलन और स्वाधीनता का आह्वान' है जो वर्ष 1915 से 1929 के बीच का घटनाक्रम है। इस कालखंड के दौरान गांधी जी के राजनैतिक गुरु गोपाल कृष्ण गोखले का निधन, चंपारण यात्रा, साबरमती आश्रम का निर्माण, वल्लभ भाई पटेल और गांधी की मित्रता, खिलाफत और अहिंसक असहयोग आंदोलन, टैगोर और गांधी मिलन, खादी को प्रोत्साहन, प्रिंस ऑफ वेल्स आगमन, सविनय अवज्ञा आदि प्रमुख घटनाओं का बहुत ही शानदार ढंग से वर्णन किया गया है। इस दौरान एक हृदय विदारक और इतिहास की सबसे क्रूरतम घटना 'जलियाँवाला बाग नरसंहार' 13 अप्रैल, 1919 को घटी। वर्ष 1921 की शुरुआत में गांधी जी द्वारा राष्ट्रीय ध्वज तैयार कराने के फैसला लेने का जिक्र इस खंड में किया गया है।

तीसरा खंड 'नमक सत्याग्रह और गोलमेज कांफ्रेंस' है जो 1930 से 1939 के मध्य का समय है। इस दौरान घटी सभी घटनाओं के साथ-साथ गांधी जी के ज्येष्ठ पुत्र हरिलाल के द्वारा गांधी जी को लिखा गया पत्र एक पत्रिका के रूप में अलग से चस्पा किया गया है।

चौथा खंड 'क्रिप्स मिशन और भारत छोड़ो आंदोलन' है जो 1940 से 1946 के मध्य का घटनाक्रम है। इस खंड में उन महिलाओं की भी चर्चा की गई है जिन्होंने महात्मा गांधी का अनुसरण करते हुए उनके सिद्धांतों को अपने जीवन में उतार लिया। उनमें से एक थीं रवींद्रनाथ टैगोर की भतीजी सरला देवी चौधरानी, जिन्हें गांधी जी अपनी 'आध्यात्मिक पत्नी' कहा करते थे। भारत ही नहीं जर्मनी, स्कॉटलैंड की महिलाएँ और यहाँ तक कि अंग्रेज एडमिरल सर एडमंड

स्लेड की बेटी मैडलिन स्लेड जिनका नाम गांधी जी ने 'मीराबेन' रखा था, भी गांधी जी की मुरीद थीं। इस काल के दौरान 1944 में कस्तूरबा गांधी की मृत्यु हो गई।

पाँचवाँ खंड है 'सांप्रदायिक दंगे, विभाजन और आजादी'। भारत की आजादी के इतिहास में सन् 1946-47 बहुत उथल-पुथल वाले रहे। एक ओर तो 15 अगस्त, 1947 को भारत को आजादी मिली वहीं दूसरी ओर 14 और 15 अगस्त को भारत दो हिस्सों विभाजित हो गया और नया मुल्क पाकिस्तान अस्तित्व में आया। इस विभाजन ने लाखों हिंदुओं, सिखों और मुसलमानों को बेघर कर दिया।

अंतिम खंड 'हत्या और दाहसंस्कार' है। इस खंड में महात्मा गांधी की हत्या और उनके दाह संस्कार की चर्चा की गई है। गांधी जी की हत्या की शाम जवाहरलाल नेहरू और वल्लभ भाई पटेल ने ऑल इंडिया रेडियो से राष्ट्र को संबोधित करते हुए कहा था, "हमारी जिंदगियों की रोशनी बुझ गई...।"

गांधी जी की हत्या के तीन साल बाद लुई फिशर ने सर्वश्रेष्ठ जीवनी 'द लाइफ ऑफ महात्मा गांधी' प्रकाशित की थी जो आठ पुरस्कारों से सम्मानित रिचर्ड एटेनबरो की फिल्म 'गांधी' का आधार बनी। गांधी जी का व्यक्तित्व इतना विशाल था कि उनसे जुड़ी प्रत्येक घटना पर पुस्तक लिखी जा सकती है। लेकिन लेखक ने इस पुस्तक में गांधी से जुड़ी प्रत्येक घटना की विवेचना बहुत गहराई से की है। अनुवादक मदन सोनी ने उतनी ही सफाई से इस पुस्तक को तराशा है। कहीं से यह पुस्तक अनुवाद नहीं जान पड़ती है।

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **योगेंद्र शर्मा**

प्रकाशक : नमन प्रकाशन, नई दिल्ली-110002

पृष्ठ : 168

मूल्य : रु. 350/-

कितने अभिमन्यु

जीवन का जितना व्यापक और सर्वांगीण चित्र उपन्यास में मिलता है, उतना साहित्य के किसी अन्य विधा में उपलब्ध नहीं है। आज के दौर में उपन्यासकार जीवन की विसंगतियों का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है। 'कितने अभिमन्यु?' योगेंद्र शर्मा का दूसरा उपन्यास है। योगेंद्र शर्मा का मानना है कि आम भारतीय स्त्री को बाल्यकाल से ही घुट्टी पिलाई जाती है कि उसके पास एकमात्र धन उसका शरीर और उसकी शुचिता है। अपनी आधी शक्तियाँ तो वह इसे सुरक्षित रखने में ही व्यय कर देती है। छोटे-छोटे 30 खंडों में विभाजित इस उपन्यास का कथानक एक वृहत संयुक्त परिवार एवं उसके नाते-रिश्तेदारों के इर्द-गिर्द बुना गया है।

उपन्यास की शुरुआत अलीगढ़ शहर की पृष्ठभूमि से होती है, जहाँ पर उपन्यास के मुख्य नायक योगेश चंद्र शर्मा का परिवार रहता है। उपन्यासकार भी अलीगढ़ के निवासी हैं और उनका नाम है योगेंद्र शर्मा। योगेश चंद्र शर्मा ने दो पुत्रियों के पिता बनने के बाद अपनी नसबंदी करवा ली है। यद्यपि उनकी माता का उन पर पूरा दबाव था। वह ऐसा न करें, वह पोते का मुँह भी देखना चाहती थीं, पर योगेश ने अपनी दोनों बेटियों को बेटे की तरह परवरिश करने को ठान ली। उनकी नजर में बेटी-बेटा में कोई भेद नहीं है। उनकी ऐसी सोच में उनकी पत्नी सरिता ने भी उन्हें पूर्ण सहयोग दिया। सरिता ने उनसे कभी जिद नहीं की कि बेटे बिना हमारे सद्कर्म अधूरे रहेंगे। सनातन धर्म में बेटे की महिमा का बहुत बखान किया गया है। बेटा को 'कुल दीपक' कहा गया है। उनके द्वारा किए गए दाह-संस्कार से माता-पिता स्वर्ग के अधिकारी होते हैं।

नारी मनोविज्ञान पर पकड़ रखने वाले उपन्यासकार का मानना है कि सफल दंपती वे हैं, जिसमें पति-पत्नी एक-दूसरे के पूरक होते हैं। वे एक और एक ग्यारह होते हैं। ऐसे पुरुषों की पत्नियाँ अपने पति की आमदनी में ही गुजारा करती हैं। वे अपने पति को उलाहना देने की बजाय पग-पग पर उसका उत्साहवर्धन करती हैं। ऐसे पति-पत्नी अपने रिश्तेदारों में फर्क नहीं करते। यह सफल दांपत्य जीवन का खास सूत्र है। योगेश और सरिता ऐसे ही दंपती हैं। वे शुरू से लेकर अंत तक एक-दूसरे का शारीरिक-मानसिक स्तर पर साथ देते हैं, इसीलिए उनके सामने जो भी चुनौतियाँ आती हैं, उसे झेलकर आगे बढ़ जाते हैं।

योगेश के माता-पिता में बराबर क्लेश रहता था कारण कि पिता समलैंगिक थे। स्वार्थी थे। उन्हें अपने किसी गलत काम पर पछतावा नहीं होता था। वे अपनी पत्नी से कहा करते थे कि मैं तो मर्द हूँ, कुछ भी करूँ। उनके माता-पिता में आपसी सामंजस्य नहीं था। ऐसे दंपती जैसे-तैसे अपनी गाड़ी खींच लेते हैं। हम कह सकते हैं कि वे एक और एक दो हैं। यह भी कह सकते हैं आधा और डेढ़ यानी दो। एक जीवनसाथी कमजोर पड़ता है तो दूसरा अत्यधिक सहयोग करके जीवन की गाड़ी खींच लेता है या खींच लेती है। तीसरे प्रकार के दंपती वे होते हैं जिनमें एक या दोनों स्पर्द्धी हो जाते हैं। एक-दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करते रहते हैं। यानी एक घटाव एक बराबर शून्य। ये अपने नर्क स्वयं तैयार करते चलते हैं। भरी थाली में लात मारने के आदी होते हैं। इस उपन्यास में इसके उदाहरण हैं—सरिता यानी योगेश की पत्नी का भाई सुजीत एवं सुजीत की पत्नी शोभा। शोभा अपने व्यवहार से सुजीत के जीवन को गर्त में धकेल देती है।

वह 41 वर्ष की उम्र में तनावग्रस्त रहने के कारण अस्पताल के बेड पर जीवन-मृत्यु के बीच अटका हुआ है फिर भी उसकी पत्नी शोभा अपने व्यवहार से उसे इतना तंग करती रहती है कि शायद ही वह ठीक होकर घर लौटे। शोभा अपने ससुराल पक्ष के लोगों एवं रिश्तेदारों को गैर मानकर व्यवहार करती है और मायके के लोगों को अपना सगा-संबंधी मानती है। ऐसे में सुजीत दो पाटों में पीसा जा रहा है।

इस उपन्यास में कैंसर के बारे में विस्तार से जानकारी दी गई है। कैंसरग्रस्त मरीजों को कितनी पीड़ा से गुजरना पड़ता है। कैंसर जब अंतिम स्टेज में होता है, तो डॉक्टर भी उनके पास जाने में डरते रहते हैं। चार सौ से ज्यादा प्रकार के कैंसर होते हैं।

इस उपन्यास में दर्शाया गया है कि हिंदुओं में पहले भी अभिव्यक्ति की आजादी थी। चार्वाक, जाबालि जैसे नास्तिक हिंदुओं में हुए हैं। समरसता, समानता होने के कारण हिंदू अपने से विलग हुए अपने पंथों को सँभाल नहीं पाए। कश्मीर प्रवास के दौरान पता चलता है कि वहाँ के लोग अपने को कश्मीरी और भारत के दूसरे राज्यों के लोगों को 'इंडियन' कहते हैं। वहाँ के जिहादी अपने को 'मिलिटेंट' कहलवाते हैं। कश्मीर के बुजुर्ग गरीब मुसलमानों का कहना है कि जिहाद का मतलब होता है 'जुल्म के खिलाफ लड़ाई'।

कुदरत ने दो तरह के इनसान दिए—औरत और मर्द। मार्क्स ने दो-दो तरह के इनसान माने—सर्वहारा और बुर्जुआ और दंगों ने दो तरह के इनसान दिए—हिंदू और मुसलमान। दंगों में अफवाहें उड़नी आम बात है, कुछ लोग तो अफवाहों की चलती-फिरती फैक्ट्री होते हैं। इस उपन्यास में अलीगढ़ में होने वाले हिंदू-मुस्लिम दंगों का वीभत्स चित्रण है।

यह उपन्यास अपने शीर्षक की सार्थकता रेखांकित करता है। यहाँ संबंधों में आदमी इतना उलझा हुआ रहता है, जैसे अभिमन्यु चक्रव्यूह में उलझा हुआ था। यानी हर कोई अभिमन्यु है। समग्रता में यह उपन्यास संबंधों के विविध पक्ष उजागर करता है।

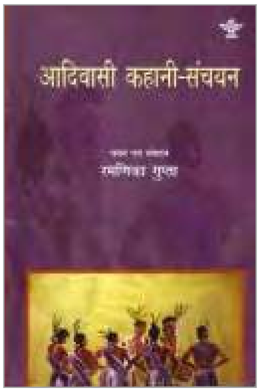

आदिवासी कहानी संचयन

समीक्षक : **गणपत तेली**

संपादन : **रमणिका गुप्ता**

प्रकाशक : साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

पृष्ठ : 400

मूल्य : रु. 300/-

आदिवासी समाज ऐसा मानव समाज है जो विकास की प्रक्रिया से दूर आज भी कमोबेश अपनी पुरानी जनजातीय जिंदगी जी रहा है। दुनिया के लगभग हर क्षेत्र में आदिवासी रहते हैं, हमारे देश में भी लगभग हर क्षेत्र में आदिवासियों का निवास है। अंग्रेजों के आगमन तक प्रायः आदिवासियों का शेष समाज से संपर्क बहुत सीमित था। अंग्रेजों की विस्तारवादी नीति और प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जे की ललक ने आदिवासियों को उनके सामने ला खड़ा कर दिया, जो आज भी जारी है। अंग्रेजों के समय से ही हमारे देश में आदिवासियों को लेकर बनाई जानी वाली नीति पर विवाद रहा है। एक पक्ष इस बात पर बल देता है कि उनकी विशिष्ट संस्कृति को अक्षुण्ण रखा जाना चाहिए। दूसरा पक्ष इसकी आलोचना करता है कि ऐसा करने से वे विकास और मुख्यधारा से दूर रह जाएँगे। जाहिर है कि शेष समाज से दूर रहने और अपनी अस्मिता के कारण वे मुख्यधारा के समाज से मुक्त रहे, लेकिन इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि वह शेष समाज से अलग-थलग पड़ गया। लेकिन कालांतर में धीरे-धीरे पूँजीवाद और आधुनिक विकास ने उनकी परंपरागत संरचनाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया जिससे उनका मुख्यधारा के साथ संपर्क अवश्यंभावी हो गया। परिणामस्वरूप, उनके समाज में भी मुख्यधारा के गुण-दुर्गुण आने लगे। साहित्य में भी इस संक्रमणशील समाज का यथार्थ दर्ज हुआ है।

इस संकलन में संताली, कुडुख, हो, खड़िया, नगपुरिया, गोंडी, भिलोरी, मराठी, बैगा, भिलाऊ, दानदानी, तेलुगु, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती आदि भाषाओं से अनूदित और मूल हिंदी में लिखित कुल 52 कहानियाँ हैं। संकलन की विविधता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इसमें स्थापित लेखक भी हैं, तो ऐसे लोग भी हैं, जिनकी कहानियों को अन्य लोगों ने लिपिबद्ध किया। आदिवासी समाज में वर्तमान समय में अपनी अस्मिता और संक्रमण के कारण उस पर आ रहे संकट या बदलाव एक मुख्य प्रवृत्ति के रूप में दिखाई देता है। यह इस संकलन की कहानियों से भी स्पष्ट होता है। 'हम खो गए' (सिद्धेश्वर सरदार), 'बिरुवार गमछा' (रोज केरकेट्टा), 'सच्चा सुख' (प्रीति मुर्मू), 'रक्तदान' (विमल कुमार टोप्पो), 'दावेदार'(सरिता सिंह बड़ाईक), 'गोल गुम्बज का चोर' (सिद्धना आई काले), 'देविया और जंगिया' (मंगला गरासिया), 'ढाव' (हरिराम मीणा), 'कुज्जीव' (शंकरलाल मीणा), 'दाँव-पेंच' (विजय सिंह मीणा), 'ढोल' (संजय लोहकरे) आदि कहानियाँ आदिवासी समाज की अस्मिता और वर्तमान समय में आ रहे बदलावों की कहानियाँ हैं। इन कहानियों में आदिवासी जीवन और संस्कृति की झलक भी दिखाई देती है। संग्रह की 'लंगड़ापन' (बिजोया सावियान), 'लसा' (वाल्टर भेंगरा तरुण), 'दूसरी औरत' (हेसेल सारू), 'कनकट्टी दीदी' (मंजुला सांगा), 'मेरे बाप की शादी' (शान्ति खलखो), 'पुत्र प्राप्ति की चाह' (महावीर उरांव), 'आधी रात को' (फ्रांसिस्का कुजूर), 'पीपली दादी'

(वी. रामकोटी 'पंवार') आदि कहानियाँ स्त्री संवेदना की कहानियाँ हैं, जिनमें आदिवासी स्त्रियों के शोषण और उनके जीवट संघर्ष को दर्ज किया गया है। इस संकलन की अन्य कहानियाँ—'दिलासा' (जोराम यालम नाबाम), 'डेले दादा' (बंधु भगत), 'मोहताज' (सुन्हेर सिंह ताराम), 'जुलूम भूख' (विश्राम वलवी), 'भाकर' (बाबाराव मंडावी), 'भूख' (जीवनमित्र उषा किरण आत्राम) आदिवासी मजदूरों और उनके अभावग्रस्त जीवन को दर्शाती हैं। इन विषम परिस्थितियों से मुठभेड़ भी हमें इन कहानियों में दिखाई देती है। 'वनवासी नहीं, आदिवासी' (वाहरू सोनवने), 'नक्सली' (शिशिर टुडू), 'उसका जिहाद' (बल्लाइया नायक तेजावथ) आदि कहानियाँ प्रतिरोध की राजनीति की कहानियाँ हैं।

रमणिका गुप्ता के अनुसार, इस संकलन का अभिप्राय यह पता लगाना था कि "कितने आदिवासी समुदाय समकालीन साहित्य में रुचि ले रहे हैं और कहानी विधा को अपना रहे हैं और कितने समुदाय अभी भी लोककथा के स्तर पर ही ठहरे हुए हैं?... कितने लोग अपनी-अपनी मातृभाषा में लिख रहे हैं और कितने क्षेत्रीय भाषाओं या हिंदी, अंग्रेजी को अपना रहे हैं?" इस परियोजना के तहत जो तथ्य सामने आए उनमें सबसे महत्वपूर्ण यह था कि "संताली, हो, कुड़ुख भाषाओं के अतिरिक्त किसी के पास अपनी लिपि नहीं है।" इस लिपि के अभाव में आदिवासी कहानियाँ या तो आपको मौखिक रूप में ही लोककथा के स्वरूप में मिलेंगी या रोमन, नागरी, बांग्ला या असमिया लिपि में। आदिवासी साहित्य के समकालीन स्वर को दर्ज करने के मकसद से जिस भी रूप में कहानीकार ने लिखा, उसे संपादक ने स्वीकार किया और आवश्यकतानुसार उन्हें लिपिबद्ध और अनूदित किया।

इस संकलन की आदिवासी कहानियाँ भारतीय साहित्य में आदिवासी स्वर को स्थापित करने वाली कहानियाँ हैं। गौर करने वाली बात यह है कि इस संकलन की कहानियाँ आदिवासी समाज की कोई रूमानी छवि नहीं प्रस्तुत करती हैं, बल्कि वे इस समाज के यथार्थ को वस्तुनिष्ठ ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। मूल रूप से इन कहानियों का एक त्रिदिवसीय आयोजन में पाठ किया गया था। विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखी गई ये कहानियाँ भारतीय आदिवासी समाज के समग्र यथार्थ को अभिव्यक्त करती है। हिंदी में इन कहानियों का प्रकाशन न केवल पाठकों के लिए विभिन्न आदिवासी समाजों बल्कि विभिन्न आदिवासी भाषाओं के साहित्यिक स्वरूप से परिचित कराता है।

समीक्षक : **राजेंद्र भट्ट**

लेखिका : **कविता काणे**

अनुवादक : **आशुतोष गर्ग**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल (म.प्र.)

पृष्ठ : 352

मूल्य : रु. 299/-

लंका की राजकुमारी

'रामायण' हमारे सबसे बड़े क्लासिक ग्रंथों में एक है। ऐसे ग्रंथ मात्र कहानी नहीं बयान करते। वे हमारे सामूहिक जीवन-मूल्यों, विश्वासों, आस्थाओं, अनुराग-विराग, आशाओं-निराशाओं को; एक भारतीय पहचान के साथ हमारी हजारों वर्षों की अनवरत यात्रा और अनुभवों को भी व्यक्त करते हैं। इसके मुख्य चरित्रों—राम-सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान और रावण आदि का अपने-अपने दायरों में विस्तार हुआ है, वर्णन हुआ है। लेकिन यह भी सच है कि ऐसे अनेक चरित्र, अपनी छोटी-बड़ी भूमिकाओं में, 'साधु' और 'खल' व्यक्तियों या इनके पक्षधर और विरोधी के खाँचों में बँधे नजर आते हैं। 'साधु' के अंतर की थोड़ा 'खलता' और 'खल' के अंदर कभी-कभी 'साधुता' की कोंध—यानी स्याह-सफेद व्यक्तित्वों का 'ग्रे' सामने नहीं आ पाता, जो कि वास्तव में मानव का सहज रंग है।

इसके अलावा कुछ चरित्रों, खास कर (हमारी पुरुष-प्रधान सोच के कारण) स्त्री चरित्रों का विकास ही नहीं हुआ। महत्वपूर्ण होते हुए भी उन्हें, उनके मनोभावों और व्यक्तित्वों के विविध पक्षों को अभिव्यक्ति ही नहीं मिली—या फिर उन्हें अच्छाई-बुराई के खाँचों में डालकर, कहानी बढ़ाने के प्रसंगों में उनकी भूमिका के बाद छोड़ दिया गया। पूछा ही नहीं गया कि उनका क्या हुआ। दोनों पुत्रों को दो बड़े व्यक्तित्व वाले भाइयों को समर्पित करने वाली अकेली सुमित्रा की व्यथा, धर्म को समर्पित लक्ष्मण-भरत के कर्तव्यों की बलिवेदी पर समर्पित मूक उर्मिला-मांडवी, भलाई और कर्तव्य के बीच बँधी मंदोदरी और प्रतिहिंसा की आग में जल रही एकाकी शूर्पणखा जैसे चरित्रों में मानव-मन की गहनताओं को समझने के लिए बहुत कुछ था। पर उनकी अनदेखी-सी हो गई।

समय-समय पर लेखकों-कवियों ने इन अनदेखे पात्रों के मन को सहानुभूति से टटोलने की, इनके अंतर्द्वंद्व और संभावनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कविता काणे का अंग्रेजी उपन्यास 'लंका'ज प्रिंसेस' शूर्पणखा को केंद्र में रखकर, उसके मन और व्यक्तित्व को समझने का उदार प्रयास करता है। आशुतोष गर्ग का हिंदी अनुवाद बड़ा ही सहज और प्रवाहपूर्ण है।

यह कहानी शूर्पणखा के अगले जन्म में कुब्जा होने से शुरू होती है, जिसकी व्यथा को विष्णु (राम के अगले) के अवतार कृष्ण सम्मान

और प्रेम के दुलार से शांत करते हैं। शूर्पणखा एक बहुआयामी चरित्र के रूप में, अच्छाइयों-बुराइयों के साथ, लेकिन सहानुभूति से चित्रित की गई है। वह ऐसे भावनात्मक रूप से टूटे परिवार की कन्या है, जहाँ माता-पिता, भाइयों-भाइयों, माँ-बेटी एवं भाइयों और बहन के बीच अनेक दुराव-छिपाव हैं, संबंधों में खटास है, षड्यंत्र हैं।

शूर्पणखा चुप रहकर बर्दाश्त करने वाली आदर्श नारी के खाँचे में फिट होने वाली नहीं है। उसमें महत्वाकांक्षा है, उद्यम है, स्वतंत्र व्यक्तित्व है, उत्कट प्रेम है और उद्दाम वासना भी है। प्रेम और आत्मीयता का अभाव उसे बदले की भावना से भर देते हैं। वह मात्र नकारात्मक छवि वाली, बड़े नाखूनों वाली 'शूर्पणखा' नहीं, अनुराग भरी 'मीनाक्षी' है। बेहद महत्वाकांक्षी भाई रावण द्वारा प्रेमी-पति विद्युतजिह्ना की हत्या, एकमात्र सहारे पुत्र के मारे जाने और लक्ष्मण के द्वारा दुत्कारे जाने की प्रतिहिंसा इस स्वतंत्र मन की नारी में भरी है। वह अपने अपराजेय लेकिन कामुकता की कमजोरी वाले भाई रावण को अपनी प्रतिहिंसा का साधन और शिकार—दोनों बनाना चाहती है। इस कहानी का अंत होता है रावण के विनाश से।

इस उपन्यास में शूर्पणखा ही नहीं, उसकी माता केकसी, मंदोदरी और उर्मिला जैसे अनेक चरित्रों के आयामों को भी उभारने का प्रयास किया गया है।

इस उपन्यास के अनुसार, (मिथकीय स्रोत स्पष्ट नहीं हैं) प्रतिहिंसक शूर्पणखा का षड्यंत्र ही सीता के प्रति राम के शक और उनके महल से निकाले जाने का कारण बनता है। लक्ष्मण से भी बदला लेने का वह प्रयास करती है, पर उर्मिला की सरलता-सज्जनता उसकी प्रतिशोध भावना को शांत कर देती है। उपन्यासकार के अनुसार, लक्ष्मण ने राजस्थान के एक लोक-देवता पाबूजी (14वीं शताब्दी) के रूप में जन्म लिया और शूर्पणखा ने फूलवती (राजस्थानी लोक गाथा में यह नाम 'फूलवंती' है) नाम की राजकुमारी के रूप में उससे प्रेम किया। पर, तब भी यह प्रेम अधूरा ही रह गया क्योंकि विवाह के पूर्व ही, एक लड़ाई में पाबूजी वीरगति को प्राप्त हुए।

शूर्पणखा जैसे संभावनाओं से भरे, लेकिन उपेक्षित महिला चरित्र के व्यक्तित्व को उभारती यह कथा मिथकों-पुराणों के नए रूपों में दिलचस्पी रखने वाले पाठकों को पसंद आएगी।

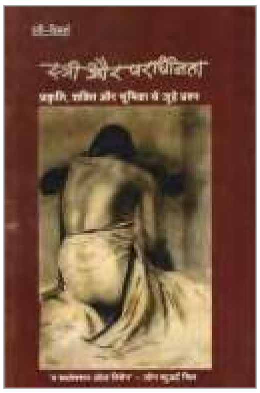

समीक्षक : **राजेंद्र भट्ट**

लेखक : **जॉन स्टुअर्ट मिल**

अनुवादक : **युगांक धीर**

प्रकाशक : संवाद प्रकाशन, मेरठ

पृष्ठ : 132

मूल्य : रु. 150/-

स्त्री और पराधीनता

इसके लेखक जॉन स्टुअर्ट मिल (1806-1873) प्रतिष्ठित ब्रिटिश अर्थशास्त्री और राजनैतिक चिंतक थे। यूरोप में, सामंती मध्यकाल के बाद जो ज्ञान-विज्ञान के पुनर्जागरण (रेनेसाँ) का दौर आया, उसकी परिणति अंततः 'स्वाधीनता, समता और भाईचारे' के आदर्शों वाली फ्रांसीसी क्रांति में हुई। वैचारिक-आर्थिक स्तर पर इन विचारों ने सामंती धार्मिक-सामाजिक ढाँचे और रूढ़ियों को समाप्त किया और तर्क, जिज्ञासा, सामाजिक समता तथा विज्ञान को बढ़ावा दिया। इन्हीं विचारों से राजनैतिक स्तर पर सबको समान अधिकार देने वाले तथा सरकार बनाने में भागीदारी वाले लोकतंत्र की बुनियाद तैयार हुई और आर्थिक स्तर पर इन्हीं विचारों ने मुक्त व्यापार-समाज वाली पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया। जॉन स्टुअर्ट मिल इसी वैचारिक-आर्थिक उदारवाद के प्रमुख दार्शनिक थे।

मिल ने अनेक आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक विषयों पर अपने तर्क आधारित विचार रखे। 'द सब्जेक्शन ऑफ विमेन' 1869 में प्रकाशित उनकी एक महत्वपूर्ण रचना है। इसके लेखन में उन्होंने पत्नी हेरिएट टेलर मिल और पुत्री हेलेन का भी योगदान स्वीकारा है।

'स्त्री और पराधीनता' इसी महत्वपूर्ण रचना का अनुवाद है। वैचारिक रूप से गहन, 140 वर्ष पुरानी अंग्रेजी वाले इस दार्शनिक क्लासिक का अनुवाद एक कसौटी रहा होगा। युगांक धीर का सुंदर, प्रवाहपूर्ण अनुवाद इस कसौटी पर खरा उतरा है। इसमें मौलिक रचना जैसा ही आस्वाद है। अच्छे अनुवाद अथवा रूपांतर के लिए जरूरी है कि अनुवादक को विषय की गहरी समझ और उससे अनुराग हो, भाषा की विविधता और 'शेड्स' पर पकड़ हो। पुस्तक के प्रारंभ में अनुवादक की संक्षिप्त लेकिन 'फोकस्ड' भूमिका से ही ये खूबियाँ नजर आ जाती हैं।

मिल की इस रचना को आधुनिक फेमिनिज़्म का पहला मील का पत्थर कहा जा सकता है। मध्य-19वीं शताब्दी के उस संक्रमण काल में, मिल एक कुशल वकील की तरह स्त्रियों की समता-विरोधी हर पूर्वाग्रह तथा मान्यता को बड़ी बारीकी और तर्कों के साथ ध्वस्त करते हैं। उनकी शैली में भावुकता और सहानुभूति नहीं है, निष्पक्ष तार्किकता और विवेक है, जो किसी भी समझदार, संवेदनशील व्यक्ति को कायल करेगा।

पुस्तक में 'प्राक्कथन' और चार अध्याय हैं और सुनियोजित क्रमबद्धता तथा प्रवाह है। 'प्राक्कथन' में वह स्त्री-पुरुष में किसी की भी श्रेष्ठता की धारणा को खारिज करते हैं और इसे मानवीय उन्नति में रुकावट मानते हैं। वह विचार-पद्धति में भावना तथा किसी बात

को 'जैसी लगती है, वैसा मान लेना' यानी 'इंस्टिक्ट'— पर तर्क और विवेक को मान्यता देते हैं।

पहले अध्याय में, मिल इस बिना परखे हुए मिथक को तोड़ते हैं कि स्त्री स्वाभाविक रूप से कमजोर अथवा कम शारीरिक-बौद्धिक क्षमता वाली है। दूसरे में वे असमानता को वैवाहिक संबंधों में स्त्री की गरिमा के प्रतिकूल सिद्ध करते हैं। तीसरे में वे स्त्रियों और पुरुषों की, बिना परखे मान ली गई सहज प्रवृत्तियों के मिथक को ध्वस्त करते हैं और अंतिम अध्याय में एक सहज, स्वतंत्र स्त्री के जन्म को समाज के सार्थक-स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक सिद्ध करते हैं।

बहुत रोचक, प्रवाहपूर्ण पुस्तक है। किसी भी समतावादी, स्त्रीवादी विचार की समझ के लिए इसे जरूर पढ़ा जाना चाहिए। स्त्रियों के लिए समान अवसर और मताधिकार आज समाज में सहज स्वीकार्य है पर 170 वर्ष पूर्व, इन विचारों को प्रस्तुत करना बड़े साहस की बात थी। मिल मात्र विचारक नहीं थे। उन्होंने उस दौर में, ब्रिटिश सांसद के रूप में, महिला मताधिकार के लिए आगे बढ़कर आवाज भी उठाई। आखिरकार, ब्रिटेन में 1928 में स्त्रियों और पुरुषों के लिए समान मताधिकार संभव हो सका। इस दृष्टि से यह इस विषय की अग्रणी पुस्तक है।

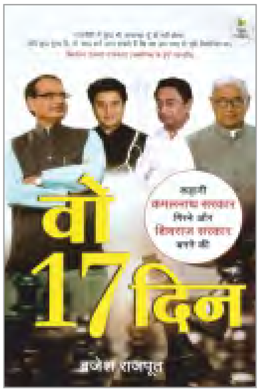

समीक्षक : **माधवी लता दुबे**

लेखक : **ब्रजेश राजपूत**

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर मध्य प्रदेश।

पृष्ठ : 152

मूल्य : रु. 175/-

वो 17 दिन

एबीपी न्यूज के विशेष संवाददाता और वरिष्ठ पत्रकार, लेखक एवं मध्य प्रदेश की राजनीति पर पैनी नजर रखने वाले ब्रजेश राजपूत की पुस्तक 'वो 17 दिन' पढ़ने का मुझे अवसर मिला। मध्य प्रदेश की राजनीति पर ब्रजेश राजपूत लगातार लिख रहे हैं। इसके पहले इनकी तीन पुस्तकें जो मध्य प्रदेश के राजनीतिक घटनाक्रम को केंद्र में रखते हुए प्रकाशित हो चुकी हैं। (चुनाव राजनीति और रिपोर्टिंग 2014, ऑफ द स्क्रीन 2018, चुनाव है बदलाव का 2019) इस क्रम में हाल ही में प्रकाशित यह पुस्तक पिछली पुस्तकों में लिखी घटनाओं से जुड़े अनुभवों का निचोड़ है। वहीं उन 17 दिनों के सत्ता संघर्ष के घटनाक्रम का सिलसिलेवार ब्योरा है जिसमें मध्य प्रदेश में कमलनाथ सरकार के 15 माह चलने के बाद अचानक गिरने और तीन बार मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री रह चुके भाजपा के नेता शिवराज सिंह चौहान के पुनः सत्ता में आने का विवरण है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पुस्तक में जहाँ एक और कमलनाथ सरकार को बचाने के लिए कांग्रेसी नेताओं के द्वारा किए गए प्रयासों का उल्लेख है वहीं दूसरी ओर पुस्तक में कांग्रेस से असंतुष्ट कांग्रेसी नेताओं के द्वारा भारतीय जनता पार्टी से मिलकर कमलनाथ सरकार को अपदस्थ करने और भारतीय जनता पार्टी की सरकार को बनवाने हेतु किए गए प्रयासों का उल्लेख है। यह पुस्तक 03 मार्च, 2020 से शुरू होकर 20 मार्च, 2020 तक का घटनाक्रम है। लेकिन इस वास्तविकता से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह ब्योरा महज 17 दिनों की रिपोर्टिंग ही नहीं है, बल्कि इस घटनाक्रम के साथ जनता के मन में उपजे तमाम सवालों के उत्तर को भी लेखक ने बड़ी संजीदगी के साथ प्रस्तुत किया है।

कमलनाथ एक कुशल राजनीतिज्ञ होने के बाद भी पार्टी के सदस्यों से दूर कैसे चले गए?, सत्ता की राजनीति लोकतांत्रिक जनादेश को तरजीह दिए बगैर कैसे बहुमत से अल्पमत में हो जाती है? जैसे तमाम प्रश्नों की गुत्थियों को लेखक ने दिल को छू जाने वाली अपनी चिर-परिचित लेखन शैली के रोचक अंदाज में सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। इस पूरे कथाक्रम में तथाकथित अपनों के बेगानी हो जाने, पद्म सम्मान और अपेक्षाओं को पूरा न हो पाने पर पार्टी के अंदर के द्वंद्व को, लेखक ने 'ऑपरेशन बदलापुर', 'जो छूटे वो रुठे', 'बरसों पुराना साथ छूटा', जैसे शीर्षक में बड़ी ही कुशलता के साथ अपने अनुभवों को साझा किया है। उन 17 दिन का पूरा घटनाक्रम बहुत ही दिलचस्प और कौतूहलपूर्ण तो था, लेकिन ऐसा होना राजनीति के निहितार्थ को प्रकट करता है। लेखक ने पुस्तक के मुखपृष्ठ पर अमेरिका की पूर्व राष्ट्रपति रूजवेल्ट के कथन को उद्धृत किया है जिसमें लिखा है—'राजनीति में अचानक यूँ ही कुछ भी नहीं होता यदि कुछ हुआ है तो आप शर्त लगा सकते हैं कि यह उस तरह से पूर्व नियोजित था'।

उन 17 दिन की किस्सागोई का क्लाइमेक्स यह है कि कांग्रेस के महाराज ज्योतिरादित्य सिंधिया 22 विधायकों के साथ बीजेपी से गठबंधन करते हैं और अचानक मध्य प्रदेश की राजनीति में हलचल बढ़ जाती है। इस घटनाक्रम के पीछे कई कयास लगाए जाते हैं जैसे यह सब क्यों हुआ? कुछ इसे ज्योतिरादित्य की महत्वाकांक्षा के चलते उपेक्षा से उपजे असंतोष को कारण मानते हैं तो कुछ सिंधिया परिवार की परिपाटी का हिस्सा। प्रश्न स्वाभाविक भी है। ज्योतिरादित्य सिंधिया का कांग्रेस पार्टी के साथ 18 वर्ष का राजनीतिक सफर और पार्टी में महासचिव की हैसियत के अलावा सोनिया गांधी परिवार के बेहद करीब रहने के बाद आखिर ऐसा क्या हुआ जिससे उन्हें इतना सख्त कदम उठाना पड़ा? और यह वह समय था जब मध्य प्रदेश की राजनीति में होली के अवसर पर रंग में भंग पड़ गई। जो कयास लगाई जा रही थी, उसमें सिंधिया के बतौर जनप्रतिनिधि कतिपय मुद्दों पर

कमलनाथ सरकार के साथ मतभेद होना चाहे, वह महाविद्यालय के अतिथि विद्वानों का मामला हो या मध्य प्रदेश के किसानों की समस्या हो जैसे कारण चर्चा में थे। सत्ता में ज्योतिरादित्य को अपेक्षित पद नहीं दिया जाना यह प्रश्न मुखरित भले ही न हो, पर उपेक्षा से उपजे असंतोष में जन समस्याओं के संदर्भ के बहाने मतभेद बढ़ा दिए और यह मतभेद मनभेद बनकर सिंधिया के कांग्रेस से बाहर सत्ता और सम्मान पाने की चाहत में दूसरे रास्ते की तरफ मुड़ गए।

सिंधिया और कमलनाथ के बीच उपजे तनाव को लेखक ने हर पहलू से लिखने की कोशिश की। कभी-कभी शक भी बेबुनियाद नहीं होता। अंततः कहानी आगे बढ़ती है और लेखक द्वारा ज्योतिरादित्य के हवाले सिंधिया परिवार के इतिहास का जिक्र उनकी भावी रणनीतिक भूमिका के लिए किया जाता है ताकि राजनीतिक घटनाक्रम से पर्दा उठ जाए। पुस्तक में इस महत्वपूर्ण घटनाक्रम के अलावा दल-बदल कानून के सहारे सत्ता की चाह, खरीद-फरोख्त की खबरें, महँगे रिसॉर्ट में भोपाल, दिल्ली, गुड़गाँव, बेंगलुरु में विधायकों की नाकाबंदी, दल बदलने पर विधायकों की मनोदशा का चित्रण और इस सब के साथ लोकतांत्रिक प्रक्रिया से मिले जनादेश के नेपथ्य में जाने और सत्ता पाने के हथकंडे का जिक्र बेहद रोमांचित करने वाला है।

मुहावरों और बेबाक टिप्पणियों के अलावा किसी छायाचित्र की भी घटनाक्रम को समझने में क्या भूमिका हो सकती है, लेखक ने इन सब का संयोजन कर पुस्तक की सामग्री को और अधिक सारगर्भित बना दिया। यह पुस्तक अपने आप में मध्य प्रदेश की राजनीति के राजनीतिक घटनाक्रम को समझाने का अनूठा प्रयास है।

शब्द-प्रतिबन्ध

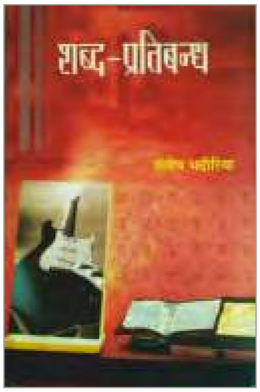

समीक्षक : **रवि भूषण**

लेखक : **संतोष भदौरिया**

प्रकाशक : मेधा बुक्स, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 182

मूल्य : रु. 200/-

आजादी के आंदोलन के समय जेल, जब्ती और जुर्माना का वरण कर संपादकों, प्रकाशकों और पत्रकारों ने कष्ट उठाए किंतु कभी परिस्थितियों के सामने झुके नहीं, किसी प्रकार का समझौता नहीं किया। साथ ही साम्राज्यवादी शासन की उन खामियों को भारतीय जनता के सामने उजागर किया जिनके कारण साम्राज्यवाद के अधीन रहने वाले देश का आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास अवरुद्ध होता है। सत्ता और प्रेस का यह संघर्ष ऐतिहासिक तथ्य है। आजादी के लिए संघर्षरत भारत के इस ऐतिहासिक दौर में अनेक ऐसे विश्वसनीय उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें सत्ता पक्ष ने समाचार पत्रों के मुँह बंद करने के अनथक प्रयास किए। विरोध, दमन एवं नियंत्रण के दुष्चक्र से निकलकर अपने कहन-विस्तार के माध्यम से पराधीन भारत में प्रतिबंधित पत्रिकाओं ने राष्ट्रीय एवं सामाजिक नवनिर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भूमंडलीकरण और चरम उपभोक्तावाद के दौर में जब हमारी स्मृतियाँ धूमिल हो रही हैं और नवउपनिवेशवाद के दौर में फँसकर हम आर्थिक और सांस्कृतिक पराधीनता की ओर बढ़ रहे हैं तब हमारे लिए राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का पुनःस्मरण आवश्यक है क्योंकि वहाँ से प्रेरणा लेकर हम भारत का नवनिर्माण करने की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। समकालीन हिंदी पत्रकारिता का बहुलांश व्यसायोन्मुख होकर अपने महत्वपूर्ण कार्यभार से दूर हो रहा है। आज पत्रकारिता 'मिशन' नहीं व्यवसाय है और दृश्य-श्रव्य माध्यम केवल शहरी मध्यवर्ग को ध्यान में रखकर जो चित्र प्रस्तुत कर रहा है, वह सामाजिक दृष्टि से किसी भी रूप में हितकर और प्रीतिकर नहीं है।

हिंदी पत्रकारिता के उद्भव, विकास और इतिहास पर पुस्तकों का अभाव नहीं है, किंतु इससे अलग संतोष भदौरिया ने अपनी पुस्तक 'शब्द-प्रतिबंध' में एक साथ भारतीय पत्रकारिता और विशेषतः हिंदी पत्रकारिता के इतिहास को प्रस्तुत करते हुए प्रतिबंधित पत्र-पत्रिकाओं पर विचार किया है। कंपनी के शासनकाल से लेकर ब्रिटिश शासनकाल तक समय-समय पर जो प्रेस अधिनियम पारित किए गए थे, उनके ब्योरों के साथ प्रतिबंधित पत्र-पत्रिकाओं की विषय-सामग्री और हिंदी के तत्कालीन महत्वपूर्ण पत्रकारों की भाषा-प्रीति और भाषा-संस्कार की चिंताएँ भी हमारे सामने रखी हैं। 'शब्द-प्रतिबंध' हिंदी पत्रकारिता का इतिहास भर नहीं है। यह हिंदी पत्रकारिता को समग्रता में देखने का एक आवश्यक प्रयत्न है।

स्वाधीनता-आंदोलन ने पत्रकारिता को गति और दिशा दी तथा पत्रकारिता ने भी स्वाधीनता आंदोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता की पारस्परिक संबद्धता पर क्षेत्रीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक महत्वपूर्ण कार्य की अब भी आवश्यकता है। पाँच अध्यायों-संघर्ष और बंधन, जेल-जब्ती-जुर्माना, देश-दुनिया, पग-पग प्रतिवाद, और कहन-विस्तार में विभाजित यह पुस्तक राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ हिंदी पत्रकारिता का विकास प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक हिंदी पत्रकारिता की संघर्ष-गाथा है। एक सुसंगत इतिहास-बोध और इतिहास-दृष्टि के बगैर हिंदी पत्रकारिता पर लिखी गई कोई भी पुस्तक उस पूरे दौर का मुक्कमल चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकती है। आरंभ से ही प्रेस की स्वतंत्रता बाधित की गई थी।

ज्यादातर प्रतिबंधित पत्रिकाएँ 20वीं सदी के तीसरे और चौथे दशक की हैं। 1857 में उर्दू पत्र 'पयामे-आजादी' के प्रकाशक और मुद्रक को ही फाँसी नहीं दी गई थी, अपितु इस पत्र के पाठकों को भी मौत के घाट उतार दिया गया था।

संतोष भदौरिया ने पुस्तक में 'बुंदेलखंड-केसरी' से लेकर 'बलिदान' तक का उदाहरण सामने रखा है। सामान्यतः दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रिकाएँ प्रतिबंधित हुईं, जिनमें मासिक पत्रिकाओं की संख्या सर्वाधिक थी। प्रतिबंधित पत्रिकाओं की संख्या बहुतायत में थी और लेखक ने लिखा है कि 'इन पत्रिकाओं के अंकों के प्रतिबंधन की विस्तृत जानकारी अभिलेखागारों में सुरक्षित सरकार के गोपनीय दस्तावेजों, रिपोर्टों से प्राप्त होती है।' लेखक की मान्यता है कि 'भारतीय राष्ट्रीयता के विकास और उसको दिशा देने का कार्य हिंदी की प्रतिबंधित पत्र-पत्रिकाओं ने बखूबी किया।' भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के साथ प्रतिबंधित पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन अधिक अर्थपूर्ण है। इन पत्र-पत्रिकाओं ने 'देश-दुनिया' की सच्ची खबर अपने पाठकों को दी, उनकी सामाजिक-राजनीतिक चेतना विकसित की और लाखों पाठकों के मानस का भी निर्माण किया। पत्र-पत्रिकाओं ने विश्व की महत्वपूर्ण घटनाओं को लगातार प्रकाशित किया, जन-जागरण का संदेश दिया, वित्तीय समाचार पर सर्वे कर रिपोर्ट प्रकाशित की, सामंती समाज-व्यवस्था की आलोचना की, गाँवों की दशा सामने रखी, स्त्रियों की आर्थिक गुलामी को प्रस्तुत कर सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया और दूसरी ओर उन्होंने क्रांति-मार्ग का भी आह्वान किया। ब्रिटिश सरकार के लिए ये एक प्रकार की चुनौतियाँ थीं।

भारतीय प्रेस पर समय-समय पर लगे प्रतिबंधों की चर्चा करते हुए लेखक ने विलियम बैंटिक और मेटकॉफ की उचित प्रशंसा की है। उसने 1921 में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं पर सरकारी दमन नीति का विशेष प्रहार भी देखा है। तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता सांप्रदायिकता के विरुद्ध थी, भारत विभाजन के विरुद्ध थी, वह जमीदारों और ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध थी। क्रांतिकारिता हिंदी पत्रकारिता की मुख्य विशेषता थी। हिंदी के समर्थ और समर्पित पत्रकार भाषा के प्रति विशेष जागरूक थे। हिंदी पत्रकारिता पर विचार करते समय भाषा-पक्ष पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। लेखक ने 'शब्द-प्रतिबंध' में भाषा-पक्ष पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है, उसका यह कथन सही है कि 'हिंदी की शुद्धता और उत्थान के प्रश्न हिंदी भाषी समाज के उत्थान का प्रश्न था, उन्होंने भाषा के सवाल को अपेक्षित गुरुता दी।

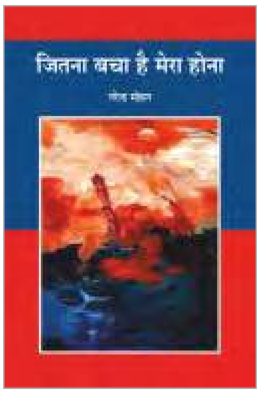

जितना बचा है मेरा होना

समीक्षक : **डॉ. आरती स्मित**
लेखक : **नरेंद्र मोहन**
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर।
पृष्ठ : 199
मूल्य : रु. 250/-

प्रस्तुत संग्रह दिल के करीब, संवेदनाओं को झकझोरती, मानस को चैतन्य करती कविताओं का समुच्चय है। कवि नरेंद्र मोहन की कलम के पैनेपन को समझना और जज़्ब करना कठिन है, क्योंकि ध्वनियों को पकड़ने की उनकी कला जितनी विलक्षण है, उतनी ही अद्भुत है दहकते मुद्दों पर लंबी कविताओं की साधना! यह उनकी काव्य-साधना ही है जो अनूठे प्रतीकों/बिंबों को माध्यम बनाकर कविता को विराट वितान देने में समर्थ होती है। उनके लेखन की ध्वन्यात्मकता और कलात्मकता ही उन्हें अनूठा साहित्यकार बनाती है। वे स्वभाव से कवि हैं, किंतु उनकी समस्त विधाओं के बीच एक रागात्मक संबंध है।

एक बात और! कवि चित्रकला, नृत्यकला और नाट्यकला में भी अपनी मजबूत पकड़ रखते हैं। एक साथ इतनी गुणवत्ता, इतना बौद्धिक ज्ञान और हरेक कला के प्रति उतनी ही तरल संवेदना और निकटता के भाव की उपलब्धि दुर्लभ है। इसलिए नरेंद्र मोहन न केवल रचनाओं, बल्कि पुस्तक के आवरण चित्र और शीर्षक के प्रति अतिरिक्त सजग दिखते हैं। इसकी एक बानगी है 'जितना बचा है मेरा होना' का आवरण चित्र। एक आलोड़न/एक बिखराव/त्रासदी जीवन की और उससे भी कहीं अधिक वैचारिक/भावनात्मक। नैतिक मूल्यों के हनन और देश विभाजन की घोषणा के साथ ही शुरू हुए अमानवीयता के नृशंस तांडव का खामोशी को अतल तक चीरता अंतर्नाद, आतंक, भय, आशंका, अविश्वास का विस्तार, लहू का लिजलिजापन चित्र से निकलकर मन पर फैलता जाता है।... सामने बचते हैं—शीर्षक और चित्र... और उनसे ध्वनित अंतर्कथा।

नरेंद्र मोहन की कई कविताएँ बार-बार रोकती हैं विमर्श के लिए। आग, नदियाँ और पेड़ कविता में प्रयुक्त ऐसे सशक्त और केंद्रीय रूपक हैं जो विभाजन और विस्थापन की त्रासदी का दंश, उनकी स्मृतियों से उठती-लहकती लपटों से पाठक को झुलसाने में समर्थ हैं। ये ही वे रूपक हैं जो बार-बार कलम से उतरकर पिछले सात दशकों और उनसे भी पहले की स्थितियों से रू-ब-रू कराते हैं... कुछ इस तरह कि संवेदनशील पाठक स्वयं को भोक्ता मान बैठे। इनकी कविताओं में संवेदना का प्रवाह, व्यंग्य की तीक्ष्णता और करुणा की निर्झरता स्वाभाविक रूप से महसूस की जा सकती है। हालाँकि कुछ कविताओं में लालित्य भी है, जीवन के मधुर पलों की कोमलता भी है, साथ ही, रंग और मंच की मिली-जुली अभिव्यक्ति कवि के लहूलुहान

हृदय के एक नन्हे अबोध और कलाप्रिय अंश का साक्ष्य प्रतीत होता है। बिंब विधान, ध्वनि-संयोजन और भाषा का चमत्कार जहाँ-तहाँ दीख पड़ता है। अतुकांत होते हुए भी कविताएँ अपनी लयात्मकता और संप्रेषण में अनूठी हैं। मोटे तौर पर इस संग्रह की 84 कविताएँ पाँच खंडों में बाँटी जा सकती हैं—

1. विभाजन के फलस्वरूप विस्थापन की त्रासदी झेलती कविताएँ—थोड़े को बहुत समझना दोस्त, चुप्पी, जिस्म अब भी थरथरा रहा है, जरा छूकर देखिए न, बाहर से कौन आया होगा, लड़की डरी हुई हुई, खून और अन्य कविताएँ। खून कविता से भाव-भाषा-चमत्कार एक बानगी—मैं कुतरने लगता हूँ/पिता की यादें/उतरने लगता हूँ/अब्दुल मजीद की पथराई आँखों में।
2. सामाजिक/राजनीतिक/साहित्यिक/शैक्षिक क्षेत्रों में व्याप्त विद्रूपताओं पर निशाना साधती कविताएँ—मैं मरना नहीं चाहता, दीवारें कंपाती हँसी, हँसते-हँसते, विसंगति, इस हादसे में, रक्तपात, घोड़ा, घ्राणशक्ति, सेवकराम, कंपकंपाती रंग परतें, पुतली नाच, कुर्सी और बहेलिया, खुद आकर देख क्यों नहीं लेते एवं अन्य कविताएँ।
3. कोमल भावों/संवेगों से जुड़ी कविताएँ—मुझे कल्पना दो, पहाड़ नीली कमीज-सा, बाहु फोर्ट से तवी, पहली बार, घर, क्या नदी मर चुकी है, पेड़, हथेली पर अंगारे की तरह, बहुत दिनों के बाद आदि।
4. नृत्यकला/चित्रकला/नाट्यकला की उदात्तता से पूर्ण कविताएँ—कला दर्शन नहीं है, कोई और हो जैसे, नाच, अलात चक्र, बर्बरता के अँधेरे में, किरदार, परिंदा, रचना-क्षण।
5. जीवन-दर्शन को खँगालती कविताएँ—सृजन : एक सिलसिला, शब्द एक आसमान, शब्द-स्मृति। शब्द-स्मृति कवि की अंतर्यात्रा का सुंदर गुंफन है।

वे शोषितों/पीड़ितों के भीतर सुलगती आग की आवाज हैं। चाहे वह दलित हो, आदिवासी/हिंदू हो, मुस्लिम/अबोध हो या परिपक्व, कोई फर्क नहीं पड़ता। उनकी कलम इन सबकी जुबान बन जाती है। कई कविताओं को दो-तीन बार पढ़ने के बाद भी ऐसा लगता है जैसे कुछ अब भी पकड़ से छूट रहा—कोई सिरा/कोई बिंदु। निश्चित तौर पर कवि शब्द-साधना करते हैं और इस साधना के प्रतिफल को पूरी तरह समझ पाना तो विद्वज्जनों के लिए ही संभव है। खासकर, लंबी विशिष्ट कविताएँ। संग्रह की कविताओं को पंखुरी-दर-पंखुरी खोला जाए तो समालोचना की पुस्तक तैयार हो जाए, इतनी संभावनाएँ हैं। अर्थों की विराटता अपना वैभव बिंब और ध्वनियों के माध्यम से पसारती है तो बुद्धि चकित रह जाती है। नरेंद्र मोहन भावों, ध्वनियों, कथ्य-शिल्प सहित अन्य समस्त कलाओं/साज-सज्जा को एक वितान पर लाकर तान देते हैं... कुछ इस तरह कि रंग-डूबे ब्रश से छितराए गए रंगों की विविधवर्णी आभा कविता को आभासित करती है।

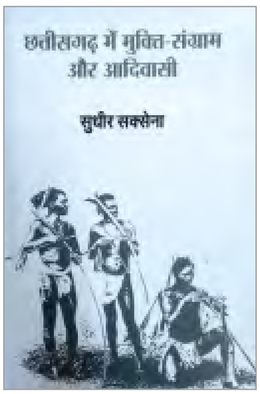

समीक्षक : **संध्या नवोदिता**

लेखक : **सुधीर सक्सेना**

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

पृष्ठ : 199

मूल्य : रु. 650/-

छत्तीसगढ़ में मुक्ति-संग्राम और आदिवासी

जब अंग्रेजों के खिलाफ भारत के आंदोलनों की बात आती है तो राष्ट्रीय स्तर के तमाम नेताओं के नाम हमें याद आते हैं। भारतीय शहीदों की एक लंबी सूची है। इसमें ऐसे बहुत से नाम हैं जो सितारों की तरह दूर से ही चमकते दिखाई दे जाते हैं, लेकिन तमाम सितारे ऐसे भी हैं जिनका नाम कहीं दर्ज होना तो दूर उन्हें हम जान ही नहीं पाए। बड़े इतिहासकारों के महत्वपूर्ण ग्रंथों में आजादी के नायकों की कथा कही गई, लेकिन इन्हीं ग्रंथों में आजादी के आदिवासी नायकों की कथाएँ अनकही, अनंकित रह गईं या फिर उनकी महान लड़ाइयों को महज एक-दो पैरा में निपटा दिया गया।

बदलाव के लिए उठा कोई भी स्वर छोटा नहीं होता, मुक्ति के युद्ध बहुत धारदार होते हैं। यह किताब पढ़ते हुए मैं भी चकित हुई और इस अफसोस से भर गई कि नेतानार के गुंडाधुर का नाम इतिहास की पाठ्य पुस्तक में क्यों नहीं पढ़ा। अजमेर सिंह, यादोराव, धुर्वाराव, गेंद सिंह, सोनाखान के शहीद वीर नारायण सिंह महान नायक हैं, जो अपनी अंतिम साँस तक मातृभूमि के लिए लड़ते रहे। 1910 का महान भूमकाल, जिसके कंपन आज भी बस्तर की धरती में महसूस किए जाते हैं, क्या इतना मामूली था कि हमारी पाठ्य पुस्तकों में उसके बारे में चार पेज भी नहीं होने चाहिए थे। क्या बस्तर की क्रांतिकारी चिनगारियाँ कानपुर, बिठूर, झाँसी, सतारा, अवध से कम ज्वलनशील थीं। फिर मध्य भारत कहे जाने वाले हिंदुस्तान के दिल की धड़कनें उस तरह कहीं दर्ज क्यों नहीं हैं। यह जानना अपने देश को जानना है कि कंपनी सरकार से संघर्ष का पहला परिचय बस्तर ने सन् 1795 में दिया है जब कैप्टन ब्लंट को बस्तर में घुसने से रोक दिया। यानी 1857 के विद्रोह से भी पहले।

यह पुस्तक मध्य भारत का इतिहास है। यूँ जानिए कि जिस दिन बस्तर में गोरे लुटेरे का पहला कदम पड़ा, उसी दिन उसके खिलाफ लड़ाई का बिगुल भी बज गया। 1857 से पहले 1824 में परलकोट के जमींदार गेंद सिंह, 1856 में लिंगागिरी के फाँसी पर

चढ़ा दिए गए धुर्वाराव, वन मित्र नागुल पोटला, निर्वासित किए गए लाल कालेन्द्र सिंह; कारावास में डाली गई राजमाता सुवर्ण कुमारी, शहीद हूँगा माँझी, आयतू महरा, एडका, कोला, भीमा, बिज्जा, बेन्ड्री, कांकेर रियासत के इन्दरू केवट, शहीद रमोतीन बाई... ऐसे कितने ही नाम पुस्तक में दर्ज करके लेखक ने हम सब का कर्ज ही उतारा है। कंपनी राज से शुरू होकर गांधी के आगमन तक तमाम विद्रोहों पर विस्तार से जानकारी है। बहुत छोटे-छोटे ब्योरे हैं। इनमें काफी कुछ अंग्रेज सरकार के गैजेटियर से लिया गया है। यह पुस्तक बस्तर को लेकर भारतवासियों में गौरव बोध कराती है। अपने मामूली संसाधनों में आदिवासी तीर-कमान, कुल्हाड़ी, गँडासे के दम पर दुनिया की सबसे ताकतवर, अन्यायी और बेरहम औपनिवेशिक सत्ता की बंदूकों और तोपों से भिड़ गए। ये तथ्य जानकर तत्कालीन अंग्रेजों से नफरत गाढ़ी हो जाएगी जिनके खाते में भूमकाल से लेकर जलियाँवाला तक की असंख्य हत्याएँ दर्ज हैं। यादोराव से लेकर गुंडाधुर और भगतसिंह जैसे नौजवानों की हत्याओं का कलंक इन अंग्रेजों के माथे पर है। इतनी क्रूरता, अमानवीयता, डकैती, लूट के लिए उनको आज सचमुच कटघरे में खड़े किए जाने की जरूरत है। इसलिए भी कि आज की लुटेरी सत्ताएँ भी इससे सबक ले सकें।

इस शोधपरक इतिहास पुस्तक में मध्यभारत के निवासियों की अंग्रेजों के विरुद्ध शौर्य और संघर्ष गाथा है। इस किताब को लिखने में लेखक को बहुत श्रम करना पड़ा है। बहुत से आर्काइव खँगालना, गैजेटियर देखना, जन स्मृतियों और स्थानीय इतिहासकारों की मदद लेना। यह पुस्तक पाठक में और जानने की जिज्ञासा जगाती है।

लेखक बस्तर में रहे हैं। उनके इस स्वभाव का लाभ पुस्तक को मिला है। यह पुस्तक मृत तथ्यों का भंडारण नहीं है, बल्कि किताब में बस्तर का हृदय धड़कता है। स्वयं लेखक के शब्दों में—"कैसा आश्चर्य है कि बस्तर के महान भूमकाल के नायक गुंडाधुर का नाम बस्तर से सैकड़ों योजन दूर भोपाल में पहले पहल सुनने को मिला। बस्तर की आत्मा से एकाकार आचार्य डॉ. हीरालाल शुक्ल के जरिए हुआ। भूमकाल घटे एक सदी हो चुकी है। यह विचारणीय है कि इंद्रावती के तट पर हुए इस लोहित प्रतिकार की स्मृति को संजोने की दिशा में सत्ता, साहित्य और समाज ने अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह कितना और किस तरह किया।"

हाँ, पुस्तक का एक अध्याय गांधी पर है। गांधी इस तरह और विराट बनकर उभरते हैं। वे दक्षिण अफ्रीका में भी हैं, लंदन में भी, दिल्ली, गुजरात में और गहन बस्तर के आदिवासियों में भी। गांधी सचमुच इस देश की आत्मा हैं। लेखक के शब्दों में नव वामन के दस डग विराट यानी गांधी ने अपने दस विराट कदमों में मध्य भारत को नाप डाला था। जंगल सत्याग्रह आग की तरह फैल गए।

यह पुस्तक सामान्य छात्र, बुद्धिजीवी, आंदोलनकर्ताओं, दुनिया बदलने में लगे नौजवानों और जिज्ञासुओं के लिए बहुत उपयोगी है।

nbt.india
एक: सूते सकलम्

आगामी अंक के लिए

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पत्रिका का **मार्च-अप्रैल, 2021** का अंक **'लोक कला'** विशेषांक होगा।
जिसमें प्रदर्शन कला, चित्र कला, भोजन, वस्त्र आदि की लोक कला से संबंधित सामग्री होगी।
इस अंक के लिए सामग्री **30 नवंबर, 2020** तक भेज सकते हैं।

लेखकों हेतु निर्देश : 1. सामग्री अधिकतम दो हजार शब्दों तक हो। 2. रचना मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए। 3. रचना के साथ संदर्भ के चित्र अवश्य भेजें। 4. लेखक का चित्र, पाँच पंक्ति में परिचय (संपूर्ण जीवनवृत्त नहीं) भेजें, जिसमें संप्रति, प्रकाशन, सम्मान आदि का विवरण हो। संपर्क के लिए पता, ई-मेल या फोन नंबर जो भी सार्वजनिक करना चाहें, भेजें। 5. किसी विशेषांक में प्रकाशनार्थ सामग्री समयसीमा के पश्चात भेजने पर स्वीकार्य नहीं होगी। 6. पत्रिका के संपादक के ई-मेल पर भेजी गई रचनाएँ ही स्वीकार्य होंगी। रचना कृति, यूनिकोड / शिवा मीडियम फॉण्ट में एम.एस. वर्ड या पेजमेकर में ही हो।

नोट : पत्रिका का मुख्य उद्देश्य पुस्तक प्रोन्नयन और पठन अभिरुचि के विकास के लिए उपयोगी सामग्री का प्रकाशन करना है। कहानी-कविताओं के लिए इसमें कम ही स्थान है।

संपादक (पुस्तक संस्कृति), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, सांस्थानिक क्षेत्र, फेज-2, नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com • दूरभाष : 011-26707758, 26707876

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में 'हिंदी पखवाड़े' का आयोजन

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत स्वायत्त संस्थान राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में दिनांक 01 से 15 सितंबर, 2020 तक 'हिंदी पखवाड़े' का आयोजन किया गया। इस दौरान चार प्रतियोगिताओं एवं हिंदी व्याख्यान का आयोजन किया गया। 02 सितंबर, 2020 को आयोजित हुई 'हिंदी निबंध लेखन प्रतियोगिता' में अधिकारी वर्ग में प्रथम पुरस्कार **श्रीमती एकता**, द्वितीय **श्री नरेन्द्र कुमार**, तृतीय **श्री जुल्फकार अली** जबकि कर्मचारी वर्ग में प्रथम पुरस्कार **श्रीमती प्रियंका जादौन**, द्वितीय **श्री प्रवीण कुमार** और प्रोत्साहन **श्री ओमवीर** को मिला। 03 सितंबर, 2020 को आयोजित हुई 'सामान्य हिंदी ज्ञान प्रतियोगिता' में अधिकारी वर्ग में द्वितीय पुरस्कार **सुश्री सुरेखा सचदेवा**, तृतीय **श्रीमती नवजोत कौर**, प्रोत्साहन **श्री मुकेश कुमार पवार** जबकि कर्मचारी वर्ग में प्रोत्साहन **श्रीमती अरुणा देवी** को मिला। 04 सितंबर, 2020 को आयोजित हुई 'हिंदी टिप्पण व प्रारूप लेखन प्रतियोगिता' में अधिकारी वर्ग में प्रथम पुरस्कार **श्री मुकेश कुमार**, द्वितीय **श्री भाग्येंद्र बहादुर पटेल** जबकि कर्मचारी वर्ग में प्रथम पुरस्कार **श्रीमती पूनम मधुकर**, द्वितीय **श्री आकाश**, तृतीय **श्री राजन कुमार बस्नेट**, प्रोत्साहन **श्री अविनाश** को मिला।

हिंदी दिवस पर व्याख्यान

"भाषा बगीचे का सुमन, हिंदी महकता राग है।" हिंदी दिवस के अवसर पर 14 सितंबर, 2020 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के सभागार में आयोजित व्याख्यान में कार्यक्रम की मुख्य अतिथि डॉ. कुमुद शर्मा ने अपने उद्‌गार कुछ यूँ व्यक्त किए। लेखिका एवं योग गुरु तथा वर्तमान में महिला महाविद्यालय, शामली में प्राचार्य डॉ. कुमुद शर्मा ने 'डिजीटल युग तक पहुँचने में हिंदी की यात्रा' शीर्षक विषय पर अपने व्याख्यान में कहा कि "हिंदी एक जीवित भाषा है। इसमें बदलाव स्वाभाविक है।...आर्य भाषा, परिवार की भाषा हिंदी से पहले भारत राष्ट्र में वैदिक संस्कृत का प्रचलन था। फिर, पालि-प्राकृत से अपभ्रंश और तब अवहट्ठ से हिंदी आई। आज की हिंदी से पूर्व ब्रज और अवधी का प्रचलन था।..." अंत में, उन्होंने अपनी बात इस आह्वान के साथ खत्म की "सब आइए, मिल-बैठ हिंदी लाइए व्यवहार में...।"

कार्यक्रम में श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' माननीय मंत्री, शिक्षा मंत्रालय द्वारा भेजे गए संदेश का उप निदेशक (राजभाषा) श्री राकेश कुमार द्वारा वाचन किया गया। श्री निशंक ने हिंदी दिवस पर बधाई दी और हिंदी में काम करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि "राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था कि हिंदी में काम करने से ही हमारा देश भारत उन्नति कर सकता है।" संचालन हिंदी अधिकारी श्री रवींद्र सिंह ने किया।

युवा आवाज को बढ़ावा

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने भारत की 'युवा आवाज' को बढ़ावा देने के लिए एक सत्र का आयोजन करके पठन-पाठन की दिशा में एक अनूठा कदम उठाया। इस सत्र में प्रख्यात बाल लेखक, चित्रकार और भारत के युवा नवोदित बाल लेखक एक साथ आए। सत्र में सुश्री सुधा मूर्ति, सुश्री दीपा अग्रवाल, श्री सुबीर रॉय और डॉ. राजेश व्यास ने लिखने और समझने के अपने अनुभवों को साझा करते हुए बताया कि बच्चे आज क्या पढ़ना चाहते हैं। सत्र में सात से 15 वर्ष की आयु के युवा बाल लेखकों—अयान गोगोई गोहेन, सारा रोज, ध्रुवदित्य तिवारी, अयान कपाड़िया, अक्षत गुप्ता, यशी त्रिपाठी ने इतनी कम उम्र में लिखने के पीछे उनकी प्रेरणा और उनके भविष्य के लक्ष्यों के बारे में बात की।

इस अवसर पर न्यास के निदेशक, श्री युवराज मलिक ने कहा कि सभी युवा लेखकों में साहित्य अकादेमी पुरस्कार, बुकर पुरस्कार या कोई अन्य प्रतिष्ठित साहित्यिक पुरस्कार जीतने की क्षमता है। इनकी प्रतिभा निखारने के लिए सही मार्गदर्शन और एक मंच की आवश्यकता है। कार्यक्रम का संचालन सुश्री कंचन वांचू शर्मा, सहायक निदेशक (जनसंपर्क) ने किया गया।

स्वच्छता के साथ महात्मा गांधी का प्रयोग : समृद्धि की कुंजी

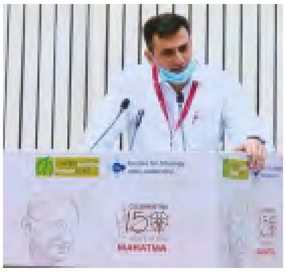

02 अक्तूबर यानी गांधी जयंती के अवसर पर केंद्रीय भंडार और सी.एस.एल. ने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के साथ 'स्वच्छता के साथ महात्मा गांधी का प्रयोग : समृद्धि की कुंजी' विषय पर विज्ञान भवन, नई दिल्ली के प्लेनरी हॉल में एक कार्यक्रम का आयोजन किया जिसका उद्देश्य स्वच्छता के विभिन्न पहलुओं पर महात्मा गांधी के दूरदर्शी विचारों का प्रचार-प्रसार करना व बढ़ावा देना था। इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि माननीय केंद्रीय पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास राज्यमंत्री डॉ. जितेन्द्र सिंह ने वर्तमान संदर्भ में स्वच्छता के महत्व और प्रासंगिकता पर चर्चा की। इस अवसर पर न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि स्वच्छता एक यात्रा है जिसे सतत बनाए रखना है। स्वस्थ परिवेश, स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मस्तिष्क सुख और समृद्धि की ओर अग्रसर करते हैं।

राष्ट्रीय बाल साहित्यकार वेबीनार

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत एवं सलिला संस्था सलूंबर के संयुक्त तत्वावधान में 'राष्ट्रीय बाल साहित्यकार' पर आधारित दो दिवसीय वेबीनार आयोजित किया गया जिसमें देशभर के बाल साहित्यकारों ने सक्रिय सहभागिता निभाई। संस्था की संस्थापक एवं अध्यक्ष डॉ. विमला भंडारी ने सलिला के बाल साहित्य कार्यक्रमों व परंपराओं का उल्लेख किया। वेबीनार के उद्घाटन सत्र को संबोधित करते हुए न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने बताया कि 'बाल साहित्य का महत्व वैसा ही है जैसा घर में बालक का। साहित्य में बाल साहित्य के बिना अधूरापन है, सूनापन है। प्रौढ़ साहित्य में भाव व रस के विभिन्न स्वरूप हमें दिखाई देते हैं, मगर बाल साहित्य सात्विक, सरल व निर्मल होता है। इसमें सारे शब्द, भाव, विचार आदि प्रेरक एवं सकारात्मक होते हैं। बालक को संस्कारित करने में बाल साहित्य अहम भूमिका निभाता है।'

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए मध्य प्रदेश साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष डॉ. विकास दवे ने बाल साहित्य के महत्व को प्रकट किया और कहा कि साहित्य में एकांकी विद्या भी अत्यधिक लोकप्रिय है। यह भी कहानी का संवाद रूप है जिसमें मंचन के वक्त अभिनव का समावेश हो जाता है।

हम फिट तो इंडिया फिट

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने 01 अक्तूबर, 2020 को पूरे माह चलने वाले 'फिट इंडिया मूवमेंट' की शुरुआत की। अभियान की शुरुआत पुरुष और महिला कर्मचारियों की 2.5 कि.मी. दौड़ के साथ हुई जिसमें पुरुष वर्ग में श्री पदम सिंह भाटी प्रथम, श्री विमल शर्मा द्वितीय व श्री मोहन सिंह तृतीय स्थान पर रहे।

वहीं महिला वर्ग में श्रीमती पूजा रावत ने प्रथम, सुश्री श्वेता कुमारी ने द्वितीय व श्रीमती कैरोलिन पाओ ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। गौरतलब है कि इस दौड़ में दिव्यांग कर्मचारी और पीठ दर्द से जूझ रही एक महिला अधिकारी ने भी बेल्ट पहनकर दौड़ पूरी की। दूसरे सप्ताह में बैडमिंटन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें पुरुष सिंगल्स में श्री आकाश ने बाजी मारी, जबकि श्री गोविंद सिंह दूसरे और श्री विजय कुमार तीसरे स्थान पर रहे। डबल्स में श्री जुल्फकार अली और श्री राजन कुमार बस्नेट प्रतियोगिता में शीर्ष पर रहे, वहीं श्री प्रवीन कुमार और श्री मनीष कुमार ने दूसरा स्थान हासिल किया। महिला सिंगल्स में श्रीमती कांती बिष्ट ने पहले स्थान पर कब्जा जमाया, जबकि श्रीमती प्रियंका खुराना दूसरे और तीसरे स्थान पर श्रीमती शेफाली नितिन वालिया रहीं। वहीं डबल्स में सुश्री रितिका और श्रीमती शेफाली नितिन वालिया ने बाजी मारी, जबकि श्रीमती प्रियंका खुराना और श्रीमती अंजू ने दूसरा स्थान हासिल किया। पुरस्कार वितरण के दौरान न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने प्रतिभागियों का हौसला बढ़ाते हुए 'हम फिट तो इंडिया फिट' और 'आधा घंटा रोज, फिटनेस की डोज' का मंत्र दिया।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ____________________

पता : ____________________

जिला : __________ शहर __________ राज्य __________ पिन कोड __________

फोन : ____________________ ई-मेल : ____________________

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) __________ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) __________ ड्राफ्ट संख्या __________ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी ____________________ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, सांस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,
नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000299
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

हमारी राजनीतिक व्यवस्था

सुभाष काश्यप

अनुवाद : **इष्ट देव सांकृत्यायन**

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के कार्यकरण को समझाती एक महत्वपूर्ण पुस्तक, जिसमें प्राचीन और मध्ययुगीन भारत में अस्तित्वमान रही राजनीतिक व्यवस्थाओं का भी जायजा लिया गया है। आधुनिक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के अवयवों का उनकी संरचना और कृत्य सहित व्याख्या भी की गई है।

पृ. 428; रु. 410.00

जब चाँद नीला था

सुकन्या दत्ता

अनुवाद : **लक्ष्मीनारायण गर्ग**

बारह विज्ञानपरक कल्पित कहानियों का संग्रह। यथार्थ और कल्पना के सर्वथा दोषरहित मिश्रण से युक्त ये कहानियाँ श्रेष्ठ वैज्ञानिक कथा साहित्य का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। प्रत्येक कहानी का कथानक उसमें व्याप्त उत्तेजना, समझ-बूझ और हास्य के ताने-बाने से बुना गया है।

पृ. 186; रु. 200.00

आदिशंकरम्

के.सी. अजय कुमार

जगद्गुरु आदि शंकराचार्य भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के उन्नायक के रूप में जाने-समझे जाते हैं। केरल राज्य के कालटी ग्राम से आत्मज्ञान की खोज में निकले बालक शंकर ने स्वयं से आयु में काफी बड़े विद्वान मंडन मिश्र को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। ऐसे ही मिथकीय चरित्र को उपन्यास-रूप में प्रस्तुत किया गया है।

पृ. 326; रु. 320.00

बच्चों को प्यार दें

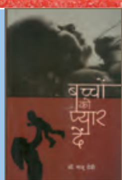

डॉ. मंजू देवी

बच्चे मानवीय दुनिया की अनमोल कृति हैं। बालपन से ही उनके व्यक्तित्व को सँवारना जरूरी होता है। यह पुस्तक बच्चों के शैशव से ही उनके मानसिक और मनोवैज्ञानिक निरीक्षण और देखभाल के साथ ही स्कूल जाते बच्चों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं, समाज के साथ तादात्म्य बिठाने की प्रक्रिया आदि विविध पक्षों पर विमर्श की पीठिका तैयार करती है।

पृ. 132; रु. 145.00

वेणु गूँजे, गगन गाजे

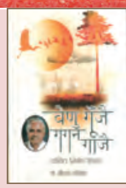

डॉ. श्रीराम परिहार

भारतीय ललित निबंध ने विभिन्न सभ्यताओं और परंपराओं को अपने साथ लिया है और अपनी एक समग्र दृष्टि विकसित की है। इस पुस्तक में लेखक के लिखे कुल 24 निबंध सम्मिलित हैं। इन निबंधों के लिए कच्चा माल उन्होंने लोक-रंग, समाज और प्रकृति से प्राप्त किया है।

पृ. 214; रु. 220.00

पेड़-पौधों का सामाजिक जीवन

सुकन्या दत्त

अनुवाद : **स्नेह लता**

पेड़-पौधों को धरती का प्रथम नागरिक कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। ये मनुष्यों के धरा पर अवतरित होने से पूर्व से मौजूद हैं और बेहद लंबे कालावधि में इनका 'सामाजिक जीवन' फल-फूल गया तो कोई अचरज की बात नहीं। अचंभा हो सकता है, पर सच है कि ये दूसरे पेड़-पौधों और प्राणियों के साथ अनुक्रिया और शायद, मित्रता भी करते हैं।

पृ. 100; रु. 160.00

अनंत सीढ़ियों पर निरंतर

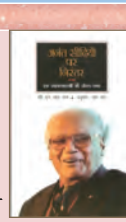

सी.एन.आर.राव

अनुवाद : **मेहेर वान**

भारत रत्न से सम्मानित प्रख्यात रसायन शास्त्री प्रोफेसर सी.एन.आर. राव की आत्मकथात्मक तरह का यह निबंध उनके जीवन-संघर्ष की एक झाँकी प्रस्तुत करता है। इसके पठन से देश में विज्ञान की प्रगति के सोपानों की प्रामाणिक जानकारी भी मिलती है।

पृ. 240; रु. 240.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in